SANKOCH FILM IS MADE ON THIS NOVEL WRITTEN BY SHART CHAND[illegible]

Stars are : JETENDRA — शेखर

— ललिता

सुलक्षणा पंडित

VIKRAM = गिरीन्द्र

[redacted]

परिणीता

१

छाती में शक्ति-सेल लगते समय लक्ष्मण के मुख का भाव सचमुच बहुत ख़राब हो गया था किन्तु गुरुचरण का चेहरा, जान पड़ता है, उस समय उससे भी अधिक ख़राब देख पड़ा, जब बड़े सबेरे ही घर के भीतर से यह ख़बर उनको मिली कि उनकी पत्नी के अभी—बिना किसी विघ्न-बाधा के—पाँचवीं लड़की पैदा हुई है।

गुरुचरण एक बैंक के क्लर्क हैं। उनको महीने में साठ रुपये मिलते हैं। अतएव उनका शरीर जैसे किराये की गाड़ी के घोड़ों की तरह शुष्क-शीर्ण है, वैसे ही आँखों में और मुख पर उन्हीं का-सा निष्काम, निर्विकार, निर्लिप्त भाव विराजमान रहता है। तथापि इस भयङ्कर शुभ समाचार को सुनते ही आज उनके हाथ का हुक्का हाथ में ही रह गया। वे फटे-पुराने चिक्कट पुश्तैनी तकिये से पीठ लगाकर जैसे बैठे ने ही [illegible] रह गये। मानों एक लम्बी साँस लेने की [illegible] ह गई।

पूर्वोक्त शुभ समाचार लेकर आई थी उनकी तीसरी लड़की अन्नाकाली। उसने कहा—बाबूजी, बिट्टी को देखने न चलोगे?

गुरुचरण ने लड़की के चेहरे की ओर देखकर कहा—बेटी, थोड़ा पानी तो ले आ, पिऊँगा।

लड़की जल लेने गई। उसके चले जाने पर गुरुचरण को सबसे पहले सौर के तरह-तरह के ख़र्चों का ख़याल आया। उसके बाद, किसी मेले-तमाशे की भीड़ के दिनों में जैसे स्टेशन पर गाड़ी पहुँचते ही जिस गाड़ी का दरवाज़ा खुला होता है उसमें तीसरे दर्जे के मुसाफ़िर गट्ठर-गठरी-बक्स वग़ैरह लिये-लादे, पागलों की तरह, और लोगों को ढकेलते-गिराते-कुचलते, बदहवास से, पिल पड़ते हैं वैसे ही गुरुचरण के मस्तिष्क के भीतर भाँति-भाँति की दुश्चिन्ताएँ—"मार-मार" करती हुई—प्रवेश करने लगीं। उन्हें याद आया कि अभी पारसाल ही उनकी दूसरी कन्या के शुभ विवाह में बऊबाज़ार का यह दुमंज़िला मकान रेहन हो गया है, और उसका भी छः महीने का सूद सिर पर सवार है। दुर्गापूजा का त्योहार सिर पर आ पहुँचा है—और एक महीने की देर है। इस बङ्गालियों के सबसे बड़े त्योहार के अवसर पर मझली लड़की की ससुराल में कुछ कपड़े, गहने, मिठाई वग़ैरह सामान भेजना ही पड़ेगा। कल दफ़्तर में रात के आठ बजे तक जमा-ख़र्च की विधि नहीं मिलाई जा सकी थी—[illegible]

के भीतर ही सब हिसाब ठीक करके विलायत ज़रूर-ज़रूर भेजना होगा। कल आफ़िस के बड़े साहब ने कड़ा हुक्म जारी किया है कि जो कोई मैले कपड़े पहनकर आवेगा वह आफ़िस के भीतर पैर न रखने पावेगा; उस पर जुर्माना होगा। लेकिन इधर यह हाल है कि एक हफ़्ते से धोबी का पता ही नहीं। जान पड़ता है, घर भर के आधे के लगभग कपड़े-लत्ते लेकर वह कहीं खिसक गया है। बेचारे गुरुचरण तकिये के सहारे बैठे भी नहीं रह सके, हुक्केवाला हाथ और ऊँचा करके लेट गये। मन में कहने लगे—भगवान्, कलकत्ते में रोज़ जो कितने ही आदमी गाड़ी-घोड़ों के नीचे कुचलकर मर जाते हैं, वे क्या मुझसे भी बढ़कर तुम्हारे श्रीचरणों में अपराधी हैं! दयामय, तुम्हारी दया से अगर एक बड़ी सी मोटर गाड़ी मेरी छाती के ऊपर होकर निकल जाती तो मेरा बड़ा उपकार होता!

अन्नाकाली ने पानी लाकर कहा—बाबूजी, उठो, पानी पीलो।

गुरुचरण ने उठकर गिलास भर पानी एक ही साँस में पी डाला और कहा—आः! जा बेटी, गिलास ले जा।

लड़की के चले जाने पर गुरुचरण फिर लेट रहे।

ललिता ने बैठक में आकर कहा—मामा, चाय लाई हूँ, उठो।

चाय का नाम सुनकर गुरुचरण फिर उठ बैठे। ललिता के मुख की ओर देखते ही उनके हृदय की आधी ज्वाला

जैसे शान्त हो गई। उन्होंने कहा—कल रात भर तुझे जागते ही बीता है बेटी, आ, तनिक मेरे पास आकर बैठ।

ललिता लज्जामिश्रित हास्य के साथ मामा के पास आकर बैठ गई और बोली—मैं रात को बहुत देर तक नहीं जागी थी मामा।

इस जीर्ण-शीर्ण, चिन्ता के भारी भार से दबे हुए, अकाल-वृद्ध मामा के हृदय की छिपी हुई गहरी व्यथा का अनुभव इस संसार में इस लड़की से अधिक और कोई करनेवाला नहीं था।

गुरुचरण ने कहा—अच्छा, ऐसा ही होगा। आ, मेरे पास आ।

ललिता ज्योंही पास आकर बैठी त्योंही गुरुचरण उसके सिर पर हाथ रखकर कह उठे—अपने ग़रीब दुखिया मामा के घर आकर तुझे दिन-रात मेहनत करनी पड़ती है, क्यों न बेटी ?

ललिता ने सिर हिलाकर कहा—दिन-रात मेहनत क्यों करनी प   है मामा ? सभी काम करते हैं, मैं भी करती हूँ।

अ   । गुरुचरण हँसे। उन्होंने चाय पीते-पीते कहा—हाँ ललित   तो फिर आज रसोई वग़ैरह का क्या इंतज़ाम होगा ?

ललिता ने मामा की ओर देखकर कहा—क्यों मामा, मैं रसोई बनाऊँगी।

गुरुचरण ने विस्मय प्रकट करते हुए कहा—तू क्या करेगी बेटी, तू क्या रसोई बनाना जानती है ?

ललिता—जानती हूँ मामा। मैंने मामी से सब सीख लिया है।

गुरुचरण ने चाय की प्याली नीचे रखकर पूछा—सच ?

"सच। अक्सर मामी बतलाती जाती हैं, मैं रसोई बनाती हूँ।" इतना कहकर ललिता ने सिर झुका लिया। उसके झुके हुए सिर पर हाथ रखकर गुरुचरण ने चुपचाप उसे आशीर्वाद दिया। उनकी आज की एक बहुत बड़ी चिन्ता दूर हो गई।

गुरुचरण का यह घर गली के सिरे पर ही था। चाय पीते-पीते नज़र खिड़की के बाहर जाते ही शेखर को देखकर उन्होंने पुकारकर कहा—कौन है, शेखर है क्या ? सुनो, सुनो!

एक लम्बे-तड़ंगे और बलिष्ठ, सुन्दर युवक ने बैठक में प्रवेश किया।

गुरुचरण ने कहा—बैठो। आज सवेरे [illegible]नी चाची की करतूत तो शायद तुम सुन चुके होगे ?

शेखर ने मुसकिराकर कहा—करतूत और क्या है, लड़की हुई है, यही न ?

गुरुचरण ने लम्बी साँस छोड़कर कहा—तुमने तो कह दिया "यही न ?", लेकिन वह क्या है, सो केवल मैं ही जानता हूँ।

शेखर ने कहा—इस तरह की बात न कहिए चाचाजी, चाची सुन पावेंगी तो उन्हें बड़ा कष्ट होगा। इसके सिवा भगवान् ने जिसे भेज दिया उसी को आदर-आनन्द के साथ ग्रहण करना ठीक है।

गुरुचरण ने दम भर चुप रहकर कहा—यह मैं भी जानता हूँ कि आदर-आनन्द करना ही ठीक है। लेकिन भैया, भगवान् भी तो सुविचार नहीं करते। मुझ ग़रीब के घर इस तरह लड़कियों का ढेर क्यों लगा रहे हैं? यह रहने की झोपड़ी तक तुम्हारे बाप के पास रेहन हो गई है। हो जाय घर रेहन, इसका भी मुझे कुछ दुःख नहीं है शेखर। मगर एक बोझ टला नहीं कि दूसरी चिन्ता खोपड़ी पर सवार हो गई। यहाँ देखो न भैया, मेरी यह ललिता बेटी सोने की देवी-प्रतिमा के समान सुन्दर है। यह बे-मा-बाप की बालिका ऐसी रूप-गुन-आगरी है कि किसी राजा के ही घर की बहू बनने योग्य है। यह रत्न किसी ग़रीब के घर शोभा नहीं पा सकेगा। तुम्हीं बताओ; मैं प्राण रहते इसे किसी ऐरे-ग़ैरे के गले कैसे बाँध दूँ? जो दुर्लभ और अनमोल कोहनूर हीरा शाहों के ताज की शोभा बढ़ानेवाला है वह तो कोई चीज़ ही नहीं, उसकी जोड़ के हज़ारों रत्न भी इस कन्या-रत्न का मूल्य नहीं हो सकते। लेकिन इस रत्न का क़दरदान पारखी यहाँ कहाँ—कौन इसका गुणग्राहक है? आजकल तो लोग कन्या के बाप की दौलत ही देखते हैं। इसी से, रुपये-पैसे पास न होने

के कारण, विवश होकर मुझे यह रत्न भी किसी गँवार गाहक के गले लगा देना पड़ेगा। तुम्हीं कहो बेटा, उस समय मेरे हृदय का क्या हाल होगा—कैसी कड़ी चोट लगेगी ? तेरह बरस की हो गई है, लेकिन यहाँ तेरह पैसे का भी सुबीता नहीं कि कहीं व्याह की बातचीत पक्की करूँ।

गुरुचरण की आँखों में आँसू भर आये। शेखर चुपचाप बैठा सुन रहा था। गुरुचरण ने उसी सिलसिले में कहना शुरू किया—भैया शेखरनाथ, तुम्हीं कहीं देख-भालकर इसका कुछ उपाय करो। देखो, तुम्हारे इष्टमित्र, सहपाठी, जान-पहचान के बहुत-से नवयुवक होंगे; शायद कोई तुम्हारे कहने-सुनने से राज़ी हो जाय और तुम्हारे द्वारा इस लड़की का उद्धार हो जाय। सुनता हूँ, आजकल अनेकों पढ़े-लिखे लायक़ लड़के ठहरौनी या प्रण-प्रथा के विरुद्ध हो रहे हैं, और ग़रीबों की लड़कियों के साथ व्याह करने लगे हैं। सम्भव है, दैवसंयोग और ईश्वर की कृपा से कहीं कोई वैसा लायक़ लड़का मिल जाय और तुम्हारे उद्योग से मेरी फाँसी का फन्दा कट जाय। मैं तुम्हें हृदय से आशीर्वाद देता हूँ—भैया, तुम राजा होगे। और अधिक क्या कहूँ बेटा, तुम्हीं लोगों के आसरे-भरोसे यहाँ पड़ा हूँ। तुम्हारे पिताजी भी मुझे अपना छोटा भाई समझते और वैसा ही व्यवहार करते हैं।

शेखर ने मस्तक हिलाकर कहा—अच्छा, देखूँगा।

गुरुचरण ने फिर कहा—देखो भूल न जाना भैया। और, ललिता के बारे में तुम .खुद ही .खूब अच्छी तरह जानते हो। वह आठ बरस की अवस्था से तुम्हारे पास पढ़ती-लिखती रही है। तुमने देख ही लिया होगा कि वह कैसी बुद्धिमती है, कैसी सुशील है, कैसी शिष्ट-शान्त है। बेचारी इतनी-सी लड़की आज से घर में रसोई बनावेगी, सबको खिलावे-पिलावेगी, गिरिस्ती का बोझ सँभालेगी—सब उसी के मत्थे आ पड़ा है।

ललिता ने एक बार आँख उठाकर देखते ही नीची नज़र कर ली। उसके होठों के दोनों सिरे केवल कुछ फैलकर रह गये। गुरुचरण ने एक साँस लेकर कहा—ललिता के बाप ने क्या कुछ कम कमाई की थी, लेकिन वह सारा धन इस तरह दान कर गया कि इस एकमात्र कन्या के लिए भी कौड़ी नहीं छोड़ी।

शेखर चुप रहा। गुरुचरण आप ही फिर कहने लगे—और यही कैसे कहूँ कि नहीं रख गया? उसने जितने आदमियों का दुःख और कष्ट दूर किया है उसका सारा फल मेरी इस बच्ची को दे गया है। नहीं तो इतनी सी लड़की ऐसी अन्नपूर्णा कैसे होती! तुम्हीं बताओ शेखर, सच है कि नहीं?

शेखर हँसने लगा। कुछ उत्तर नहीं दिया।

शेखर जैसे उठने को तैयार हुआ वैसे ही गुरुचरण ने पूछा—इतने सबेरे कहाँ जाते हो?

"बारिस्टर साहब के बँगले पर—एक मुक़द्दमा है।" यह कहकर शेखर उठ खड़ा हुआ। गुरुचरण ने एक बार फिर याद दिलाते हुए कहा—मैंने जो कुछ कहा है उसका ख़याल रखना भैया। इसका रङ्ग ज़रा साँवला ज़रूर है, लेकिन ऐसी आँख, चेहरा, ऐसी हँसी, इतनी दया और ममता दुनिया भर में खोजते फिरने पर भी कोई कहीं नहीं पावेगा।

शेखर सिर हिलाकर हँसता हुआ चला गया। इस लड़के की अवस्था २५।२६ बरस की होगी। एम्० ए० पास करके कुछ दिन शिक्षा प्राप्त करने के बाद पारसाल, परीक्षा पास करके, एटर्नी हो गया है। इसके पिता नवीनचन्द्र राय, गुड़ के कारबार में लखपती होकर, कई साल से वह धन्धा छोड़कर, घर बैठे तिजारत कर रहे हैं। उनके बड़े लड़के का नाम अविनाश है। वह वकालत करता है। छोटा लड़का यही शेखरनाथ है। राय महाशय का भारी पक्का तिमंज़िला मकान महल्ले भर में सब इमारतों से ऊँचा था। उसी की एक खुली छत से गुरुचरण के घर की छत मिली होने के कारण दोनों परिवारों में परस्पर बड़ा हेलमेल और गहरी आत्मीयता उत्पन्न हो गई थी। दोनों घरों की औरतें इसी राह से आया-जाया करती थीं।

———

२

श्यामबाज़ार में, एक बड़े आदमी अर्थात् अमीर के घर में, शेखर के ब्याह की बातचीत बहुत दिनों से चल रही थी। उस दिन वे लोग लड़के को देखने आये और अगले महीने के ही किसी एक शुभ दिन में विवाह का मुहूर्त ठीक करने की इच्छा प्रकट कर गये। किन्तु शेखर की मा ने यह प्रस्ताव स्वीकार नहीं किया। उन्होंने महरी की मारफ़त बाहर बैठक में कहला भेजा कि लड़का ख़ुद जाकर पहले लड़की को देख आवे और पसन्द कर ले, तब ब्याह होगा।

नवीन राय अर्थात् दुलहे के बाप की नज़र सिर्फ़ ज़र के ही ऊपर थी। उन्होंने मालकिन की इस गड़बड़ डालनेवाली शर्त से अप्रसन्न होकर कहा—यह क्या कहती हो? अब इसकी क्या ज़रूरत। लड़की तो देखी हुई है। ब्याह की बात पहले पक्की हो जाय, उसके बाद "आशीर्वाद"* करने के दिन अच्छी तरह देखभाल लिया जायगा।

तथापि पुरखिन राज़ी नहीं हुई—पक्का वचन नहीं देने दिया। उस दिन नवीन राय ने ख़फ़ा होकर बहुत देर करके भोजन किया, और दिन को बाहर—बैठके में—ही लेटे रहे।

---

* बंगालियों में यह रीति है कि ब्याह के पहले वरपक्ष के लोग कन्या के पिता के घर जाकर कन्या को कुछ द्रव्य देकर आशीर्वाद देते हैं, और उसे देखते हैं।

शेखर ज़रा शौक़ीन मिज़ाज का लड़का है। वह तिमंज़िले के कमरे में रहता है। उसका कमरा ख़ूब फ़ैशनेबिल सामान से सजा हुआ है। पूर्वोक्त घटना के पाँच-छः दिन बाद एक दिन वह तीसरे पहर अपने कमरे में बड़े आईने के आगे खड़ा, लड़की को देखने जाने के लिए, साज-सामान कर रहा था—तैयार हो रहा था। एकाएक वहाँ ललिता पहुँच गई। दम भर चुपचाप खड़े-खड़े देखते रहने के बाद उसने पूछा—बहू को देखने न जाओगे ?

शेखर ने घूमकर देखा, और कहा—तुम आ गईं ! अच्छा हुआ। आओ, अच्छी तरह सँवार-सिंगार दो, जिसमें बहू पसन्द कर ले !

ललिता ने हँसकर कहा—"इस समय तो मुझे फ़ुरसत नहीं है शेखर दादा, मैं तो यहाँ रुपये लेने आई हूँ।" अब उसने तकिये के नीचे से चाभियों का गुच्छा उठाकर एक दराज खोली। गिनकर कुछ रुपये निकाले, उन्हें आँचल में बाँधा और जैसे अपने ही आप कहा—रुपये तो जब दरकार होते हैं तभी ले जाती हूँ, मगर यह देना अदा कैसे होगा ?

शेखर ब्रश से बाल सँवार रहा था। एक ओर के बालों को ब्रश से अच्छी तरह ऊपर की ओर फिराकर ललिता की ओर घूमकर उसने कहा—अदा होंगे, या हो रहे हैं ?

ललिता इस उक्ति का कुछ अर्थ न समझ सकी, शेखर की ओर ताकती रह गई।

शेखर ने कहा—देख क्या रही हो ? समझ में नहीं आया ?

ललिता ने सिर हिलाकर कहा—नहीं।

"और तनिक सयानी हो लो, तब सब समझ सकोगी" कहकर शेखर जूते पहनकर चल दिया।

रात को शेखर चुपचाप एक कोच के ऊपर लेटा हुआ था। माँ वहाँ आईं तो वह चटपट उठ बैठा। माँ ने एक कुर्सी पर बैठकर पूछा—लड़की कैसी देख आया शेखर, कुछ बताया नहीं ?

शेखर ने माँ के मुँह की ओर देखकर हँसकर कहा—अच्छी है।

शेखर की माँ का नाम था भुवनेश्वरी। अवस्था ५० के लगभग होने पर भी उनकी काठी ऐसी अच्छी थी कि देखने में ३५-३६ वर्ष से अधिक अवस्था नहीं जान पड़ती थी। उनके शरीर के अङ्ग-प्रत्यङ्ग सुडौल, सुन्दर और सुदृढ़ थे। इस सुन्दर आवरण के भीतर जो माता का हृदय था वह और भी तरुण और कोमल था। वे गाँव की लड़की थीं। देहात में जन्म लेकर वहीं बड़ी हुई थीं अवश्य, लेकिन जब शहर में ब्याह कर आईं तब वहाँ के लोगों में भी वे ख़ूबी के साथ खप गईं—एक दिन के लिए भी किसी बात में उनका देहातीपन नहीं देख पड़ा। उनमें शहरवाली औरतों से कम शऊर, शिष्टाचार या सौजन्य न था। एक

श्रोर शहर की फुर्ती, ख़ुशमिज़ाजी, ज़िन्दादिली श्रौर चाल-ढाल को उन्होंने जैसे श्राते ही अपना लिया, वैसे ही दूसरी श्रोर अपनी जन्मभूमि की सादगी, सरलता, सचाई श्रौर मधुर वाणी श्रादि की विशेषताएँ भी नष्ट नहीं होने दीं।

यह माता शेखर के लिए कितने बड़े गर्व श्रौर गौरव की चीज़ थी इसका पूरा-पूरा ज्ञान स्वयं उसकी माता को भी न था। परमात्मा ने शेखर को सभी कुछ दिया था, अनेक सौभाग्य-सुलभ दुर्लभ वस्तुएँ श्रौर विशेषताएँ उसे प्राप्त थीं। असाधारण सम्पूर्ण स्वास्थ्य, रूप, ऐश्वर्य, सुख, विद्या, बुद्धि श्रादि का वह श्रधिकारी था। किन्तु इस माता की सन्तान होने के सौभाग्य को ही वह भगवान् का सर्वश्रेष्ठ दान मानकर मन, वाणी, काया से उनका कृतज्ञ था।

मा ने कहा—'अच्छी है' कहकर तू तो चुप हो गया!

शेखर ने फिर हँसते हुए सिर झुकाकर कहा—तुमने जो पूछा वही बतला दिया मैंने मा! श्रौर क्या कहता?

सुनकर माँ ने भी हँस दिया। फिर कहा—मैंने जो कुछ पूछा था वह सब अच्छी तरह तूने कहाँ बतलाया! रङ्ग कैसा है—गोरा है? किसकी तरह है, हमारी ललिता की तरह?

शेखर ने सिर उठाकर कहा—ललिता तो साँवली है माँ, वह उससे गोरी है।

माँ—श्राँखें कैसी हैं? चेहरा कैसा है?

शेखर—यह सब भी बुरा नहीं है।

मा—तो फिर उनसे कह दूँ कि बातचीत पक्की कर लें ?

अब की शेखर कुछ न बोला। क्षण भर बेटे के मुँह की ओर ताकते रहकर एकाएक मा पूछ बैठी—हाँ रे शेखर, लड़की पढ़ी-लिखी भी है ? कहाँ तक शिक्षा पाई है ?

शेखर ने कहा—यह कुछ तो मैंने पूछा नहीं मा।

बहुत ही विस्मय के साथ माता ने कहा—पूछा क्यों नहीं ? आजकल तुम लोगों की नज़र में जो बात सबसे चढ़कर ज़रूरी है, वही पूछना तू कैसे भूल गया ?

शेखर ने हँसकर कहा—मा, सच कहता हूँ, इसका ख़याल ही मुझे नहीं आया।

लड़के का उत्तर सुनकर अब की भुवनेश्वरी के आश्चर्य का ठिकाना नहीं रहा। क्षण भर पुत्र के मुँह की ओर ताककर उन्होंने हँसकर कहा—तो तू वहाँ ब्याह नहीं करना चाहता, यह क्यों नहीं कहता ?

शेखर इसके उत्तर में कुछ कहनेवाला ही था कि इतने में ललिता आ पहुँची। उसे देखकर वह चुप हो गया। ललिता धीरे-धीरे आकर भुवनेश्वरी के पीछे खड़ी हो गई। उन्होंने बायें हाथ से ललिता को सामने की ओर खींचकर कहा—क्यों बेटी ?

ललिता ने धीमे स्वर में कहा—कुछ नहीं अम्मा।

ललिता पहले भुवनेश्वरी को मौसी कहती थी। मगर भुवनेश्वरी ने उसे मना कर दिया। कहा—मैं तेरी मौसी तो नहीं हूँ, मा बेशक हूँ। तब से ललिता उन्हें कभी मा और कभी अम्मा कहती थी। भुवनेश्वरी ने ललिता को प्यार के ढँग से और भी छाती के पास लाकर कहा—कुछ नहीं! तो जान पड़ता है, सिर्फ़ मुझे देखने आई है—क्यों न?

ललिता चुप रही।

शेखर ने कहा—तुमको देखने तो आई है मा, लेकिन इतनी फ़ुरसत कहाँ है? रसोईं कब करेगी?

मा—रसोईं क्यों करेगी वह?

शेखर ने आश्चर्य प्रकट करके कहा—तो फिर इन लोगों के खाने के लिए रसोईं कौन करेगा मा? ललिता के मामा ने ख़ुद उस दिन मुझसे कहा था कि ललिता ही अब कुछ दिन भोजन बनावेगी।

सुनकर मा हँसने लगीं। बोलीं—इसके मामा की बात का कुछ ठीक-ठौर है—जो मुँह में आया, कह दिया। इसका अभी ब्याह नहीं हुआ—इसके हाथ की रसोईं कौन खायगा?* मैंने अपने घर के 'महराज' को भेज दिया है, वही वहाँ रसोई बना रहे होंगे। यहाँ घर की रसोई बड़ी

* बंगाल में क्वारी लड़की के हाथ की बनी रसोईं न खाने की परिपाटी है। पर हमारे प्रान्त में साधारणतया ऐसा कोई नियम नहीं।

बहू कर लेगी। मैं तो इधर कई दिन से दोपहर को ललिता ही के घर खाती हूँ।

शेखर समझ गया कि उसकी दयामयी माता ने इस दुखिया दरिद्र परिवार का दु:ख बँटाने के लिए यह भार अपने ऊपर ले लिया है। वह एक तृप्ति और सन्तोष की साँस लेकर चुप हो रहा।

एक महीने के लगभग बीत जाने पर एक दिन शाम हो जाने के बाद शेखर अपने कमरे में कोच के ऊपर करवटियाँ लेटा हुआ कोई अँगरेज़ी का उपन्यास पढ़ रहा था। अच्छी तरह उसमें मन लग गया था। इसी समय ललिता आकर तकिये के नीचे से चाभी निकालकर खटपट की आवाज़ करती दराज़ खोलने लगी। शेखर ने किताब से सिर बिना उठाये ही पूछा—क्या है?

ललिता ने कहा—रुपये ले रही हूँ।

शेखर केवल एक बार 'हूँ' कहकर फिर वैसे ही पढ़ता रहा। ललिता आँचल में रुपये बाँधकर उठ खड़ी हुई। आज वह सज-धजकर आई थी। उसकी इच्छा थी कि शेखर एक बार उसकी ओर देखे। उसने फिर कहा—दस रुपये लिये हैं शेखर दादा।

शेखर ने कहा—अच्छा। लेकिन फिर भी उसने ललिता की ओर नहीं देखा। कोई उपाय न देखकर ललिता यह-

वह चीज़ उठाने-धरने लगी, व्यर्थ ही देर करने लगी। जब किसी तरह कुछ फल न हुआ तब उठकर धीरे-धीरे चली गई। किन्तु यों चले जाने से ही तो काम नहीं चलने का। उसे फिर लौट आकर किवाड़ों के पास खड़े होना पड़ा। आज वह अपनी बहनेली वग़ैरह के साथ थियेटर देखने जायगी।

ललिता जानती थी कि शेखर की आज्ञा पाये बिना उसका जाना कहीं नहीं हो सकता। किसी ने ललिता से यह बात कह नहीं दी थी। शेखर की आज्ञा लेने की क्यों आवश्यकता है—यह तर्क भी किसी दिन ललिता के मन में नहीं उठा। बात यह थी कि जीवमात्र के जो एक स्वाभाविक सहज-बुद्धि होती है उसी बुद्धि ने ललिता को सिखा दिया था कि शेखर की आज्ञा उसके लिए माननीय है। उसकी यह सहज धारणा थी कि और सब लोग अपनी इच्छा के अनुसार चाहे जो कर सकते हैं, जहाँ चाहे तहाँ जा सकते हैं, किन्तु मैं वैसा नहीं कर सकती। वह खूब समझती थी कि मैं स्वाधीन नहीं हूँ, और केवल मामा-मामी की अनुमति ही मेरे लिए यथेष्ट नहीं।

ललिता ने दरवाज़े की आड़ में खड़े होकर धीमी आवाज़ में कहा—हम लोग थियेटर देखने जाते हैं।

ललिता की धीमी आवाज़ शेखर के कानों तक न पहुँची, इससे उसने कुछ उत्तर भी नहीं दिया।

तब ललिता ने और ज़रा ऊँचे स्वर में कहा—सब लोग मेरे लिए खड़े मेरी राह देख रहे होंगे।

अबकी शेखर ने सुन लिया। किताब को एक तरफ़ रखकर उसने पूछा—क्या हुआ—क्या कहती हो ?

ललिता ने कुछ रूठकर कहा—इतनी देर में अब, जान पड़ता है, सुन पड़ा ? हम लोग आज थियेटर देखने जा रहे हैं।

शेखर ने कहा—हम लोग के माने ? कौन लोग ?

"मैं, अन्नाकाली, चारुबाला, उसका भाई, उसका मामा—"

शेखर—उसका मामा कौन ?

ललिता— उनका नाम गिरीन्द्र बाबू है। ५-६ दिन हुए, अपने घर मुँगेर से यहाँ आये हैं। यहाँ, कलकत्ते में, रह कर बी० ए० में पढ़ेंगे। बड़े अच्छे आदमी हैं—

शेखर बीच ही में कह उठा—वाह! नाम, पता, पेशा, सब मालूम कर लिया तुमने तो! देख पड़ता है, इतने ही में खूब हेलमेल हो गया है। इसी लिए चार-पाँच दिन से तुम ग़ायब रहती हो। जान पड़ता है, ताश खेला करती हो ?

अचानक शेखर के बात करने का ढंग बदला हुआ देखकर ललिता डर गई। उसे ख़याल भी न था कि इस तरह का प्रश्न उठ सकता है। वह चुप हो रही।

शेखर ने फिर पूछा—इधर कई दिन से ताश का खेल होता था—क्यों ?

ललिता ने संकुचित होकर धीरे से अपनी लाचारी जताते हुए, संकोच के स्वर में, कहा—चारु के कहने—

"चारु के कहने से ? क्या कहने से ?" कहते हुए शेखर ने एक बार सिर उठाकर ललिता की ओर देखा। फिर कहा—एक दम कपड़े-लत्ते से लैस होकर आई हो—अच्छा, जाओ।

लेकिन ललिता नहीं गई—वहीं चुपचाप खड़ी ही रही।

चारुबाला का घर ललिता के घर के पास ही है। चारु उसकी सहेली है। दोनों हमजोली हैं। चारु के घरवाले ब्राह्मसमाजी हैं। इस गिरीन्द्र के अलावा चारु के घर के सभी आदमी शेखर के परिचित हैं। ५-७ साल हुए, गिरीन्द्र कुछ दिन के लिए एक बार यहाँ आया था। अब तक वह बाँकीपुर में पढ़ता था—कलकत्ते आने का न प्रयोजन ही हुआ, और न वह आया ही। इसी कारण शेखर उसे जानता-पहचानता न था। ललिता को फिर भी खड़े देखकर—"बेकार क्यों खड़ी हो, जाओ;" कहकर शेखर ने फिर किताब खोल ली, और पढ़ना शुरू कर दिया।

पाँच मिनट के लगभग चुप रहने के बाद ललिता ने फिर धीरे से पूछा—जाऊँ ?

"जाने ही को तो कह चुका हूँ ललिता।"

शेखर का रँग-ढँग देखकर ललिता के मन से थियेटर देखने का उत्साह उड़ गया, लेकिन बात ऐसी थी कि गये बिना भी न बनता था।

तय यह हुआ था कि आधा खर्च चारु का मामा देगा, और आधा ललिता देगी।

चारु के घर में सब लोग उसी की अपेक्षा कर रहे होंगे—देर होने के कारण ऊब रहे होंगे। जितनी देर हो रही है, उतनी ही उन लोगों की बेचैनी बढ़ रही है—यह दृश्य कल्पना के द्वारा ललिता की आँखों के आगे नाचने लगा। किन्तु बचने का कोई उपाय भी उसे नहीं सूझ पड़ता था। और भी २-३ मिनट तक चुप रहने के बाद फिर उसने कहा—बस, सिर्फ़ आज ही के दिन जाना चाहती हूँ—जाऊँ ?

शेखर ने किताब को एक तरफ़ फेंक दिया, और धमका-कर कहा—दिक़ मत करो ललिता, जाने की इच्छा हो तो जाओ। अब अपना भला-बुरा समझने लायक़ हो चुकी हो।

सुनते ही ललिता चौंक उठी। ललिता को अक्सर शेखर झिड़कता, डाँटता और धमकाता था। आज कुछ पहला ही मौक़ा न था। सुनने और सहने का अभ्यास अवश्य था, लेकिन इधर दो-तीन साल से ऐसी कड़ी झिड़की या झड़प झेलने की नौबत नहीं आई थी। उधर साथी सब राह देख रहे हैं, इधर वह ख़ुद भी पहन-ओढ़कर तैयार खड़ी है। सिर्फ़ रुपये लेने के लिए आना ही आफ़त हो गया! अब उन सब साथियों से जाकर वह क्या कहेगी ?

कहीं जाने-आने के लिए ललिता को आज तक शेखर की ओर से पूरी स्वतन्त्रता प्राप्त थी, वह कभी रोक-टोक नहीं करता था। इसी धारणा के बल पर वह आज भी एकदम सज-धजकर शेखर के पास केवल रुपये भर लेने आई थी।

इस समय उसकी वह स्वाधीनता ही केवल ऐसे रूढ़ भाव से खर्व नहीं हो गई, बल्कि जिस लिए स्वाधीनता कुण्ठित हुई वह कारण कितनी बड़ी लज्जा की बात है, यह आज अपनी इस तेरह वर्ष की अवस्था में पहली ही बार अनुभव करके वह भीतर ही भीतर जैसे कटी जा रही थी। अभिमान से आँखों में आँसू भरकर वह और भी पाँच मिनट के लगभग खड़ी रही। इसके बाद अपने घर जाकर ललिता ने दासी के ज़रिए अन्नाकाली को बुलवाकर उसके हाथ में दस रुपये देकर कहा—काली, आज तुम सब जाकर देख आओ। मेरी तबियत बहुत ख़राब हो गई है; चारु से जाकर कह दे, मैं आज न जा सकूँगी।

अन्नाकाली ने पूछा—कैसी तबियत है? क्या हुआ?

ललिता ने कहा—सिर में दर्द है, जी मतला रहा है, तबियत बहुत ही ख़राब हो रही है।

इतना कहकर वह करवट बदलकर लेट रही। इसके बाद चारु ने आकर बड़ी ख़ुशामद की, ज़ोर-ज़बरदस्ती भी की, मामी से सिफ़ारिश कराई, किन्तु किसी तरह ललिता को उठकर चलने के लिए राज़ी न कर पाया। अन्नाकाली दस रुपये पा गई थी, इसलिए वह जाने को चटपटा रही थी। कहीं इस गड़बड़ में पड़कर जाना न हो सके, इस भय से उसने चारु को आड़ में ले जाकर रुपये दिखाकर कहा—दीदी की तबियत अच्छी नहीं है, वे न जायँगी तो क्या हर्ज है चारु दीदी?

उन्होंने मुझे रुपये दे दिये हैं—यह देखो। आओ, हम लोग चलें।

चारु ने समझ लिया, अन्नाकाली अवस्था में छोटी है तो क्या हुआ, बुद्धि उसमें किसी से कम नहीं है। वह राज़ी हो गई, और अन्नाकली को लेकर चली गई।

३

चारुबाला की मा मनोरमा को ताश खेलने का बड़ा शौक़ था। मगर मुश्किल यही थी कि खेलने का शौक़ जितना था, उतनी निपुणता न थी। मगर ललिता उनकी इस कमी को दूर कर देती थी। वह खेलने में बहुत निपुण थी। मनोरमा का ममेरा भाई गिरीन्द्र जबसे आया था तबसे, इधर कई दिन से, दोपहर भर लगातार ताश का खेल होता था। गिरीन्द्र एक तो मर्द था, उस पर खेलता भी अच्छा था। अतएव उसके मुक़ाबले में बैठकर खेलने के लिए मनोरमा को ललिता की अनिवार्य आवश्यकता होती थी।

नाटक देखने जाने के दूसरे दिन ललिता को ठीक समय पर उपस्थित न देखकर मनोरमा ने बुला लाने के लिए अपनी दासी भेजी। उस समय ललिता बैठी हुई एक मोटी सी सादी कापी में किसी अँगरेज़ी-पुस्तक का बँगला में तर्जुमा लिख रही थी—नहीं गई।

ललिता की सहेली चारु भी आकर कुछ न कर पाई। तब मनोरमा ने ख़ुद जाकर पोथी-कापी आदि सब झाड़ाके

से उधर फेंकते हुए कहा—ले, उठ, चल जल्दी। नरीचा पास करके तुझे जजी नहीं करनी होगी—बल्कि ताश ही खेलने पड़ेंगे—चल।

ललिता असमञ्जस में पड़ गई। रुआसी सी होकर उसने अपनी असमर्थता जनाई। कहा—आज किसी तरह जाना न होगा, कल आने का पक्का वादा रहा। मगर मनोरमा ने एक न सुनी। अन्त को यह हुआ कि मामी से कहकर ज़बरदस्ती हाथ पकड़कर उठाया, तब लाचार होकर ललिता गई। नियमानुसार आज भी ललिता को गिरीन्द्र के विपक्ष में बैठकर ताश खेलना पड़ा। लेकिन आज खेल नहीं जमा। वह किसी तरह उधर मन न लगा सकी। ललिता खेलते समय आदि से अन्त तक उदास और उचाट बनी रही और दिन ढलने के पहले ही उठ खड़ी हुई। जाते समय गिरीन्द्र ने कहा—आपने कल रात को रुपये तो भेज दिये, मगर गई नहीं। चलिए, कल फिर चलें।

ललिता ने सिर हिलाकर धीमे स्वर में कहा—नहीं—मेरी तबियत बहुत ही ख़राब हो गई थी।

गिरीन्द्र ने हँस कर कहा—मगर अब तो आपकी तबियत ठीक है न? मैं कल फिर चलने के लिए कहता हूँ—चलिए न; नहीं जी, कल आपको चलना ही पड़ेगा।

"ना, ना, कल तो मुझे छुट्टी ही न होगी!" यह कहकर ललिता तेज़ी से चली गई।

यह बात न थी कि केवल शेखर के डर से ही ललिता का मन आज खेल में नहीं लग पाया; नहीं, उसे ख़ुद भी आज गिरीन्द्र के मुक़ाबले में खेलते बड़ी लज्जा लग रही थी।

शेखर के ही घर की तरह इस घर में—चारु के यहाँ—भी ललिता लड़कपन से ही आती-जाती रहती है, और अपने घर के लोगों के आगे जैसे निकलती-पैठती है, वैसे ही इस घर के मर्दों के सामने भी। इसी कारण चारु के मामा से भी उसने कुछ पर्दा नहीं किया—शुरू से ही बोलने-चालने में वह नहीं हिचकी। किन्तु आज गिरीन्द्र के आगे बैठकर जब तक वह खेलती रही, न जाने कैसे उसको यही जान पड़ा कि इसी स्वल्प-परिचय से, इतने ही दिनों के भीतर, गिरीन्द्र उसे कुछ विशेष प्रीति की नज़र से देखने लगा है। आज से पहले उसने कभी इसकी कल्पना भी नहीं की थी कि पुरुषों की प्रीति-पूर्ण दृष्टि इतनी लज्जा की सृष्टि कर सकती है।

अपने घर में एक झलक दिखाकर ही ललिता शेखर के घर में हो रही। सीधे शेखर के कमरे में घुसकर लगे हाथ अपने काम में जुट गई। छुटपन से ही इस घर के छोटे-मोटे साधारण सफ़ाई के काम ललिता कर दिया करती है। शेखर की किताबों को क़ायदे से सँभालना और रखना, मेज का सारा सामान सजाना, दावात-क़लम वग़ैरह सफ़ा करना वग़ैरह सब काम ललिता ही करती थी। उसके सिवा इधर ध्यान देनेवाला दूसरा कोई न था। इधर ६-७ दिन हाथ न

[illegible]
[illegible]
[illegible]
[illegible]
[illegible]
[illegible]
[illegible]
[illegible]
[illegible]
[illegible]
[illegible]
[illegible]
[illegible]
[illegible]
[illegible]
[illegible]
[illegible]

ललिता ने सोच रक्खा था कि काम ख़तम कर के शेखर के आने से पहले ही वह चली जायगी, लेकिन अनमनी होने के कारण घड़ी पर नज़र नहीं पड़ी, देर हो गई। अचानक दरवाज़े के बाहर जूतों की चरमराहट सुनकर सिर उठाकर ही सिटपिटाई हुई ललिता एक किनारे हटकर खड़ी हो गई।

शेखर ने भीतर घुसते ही कहा—अच्छा, तुम हो! कल कितनी रात बीते लौटीं?

ललिता ने कुछ जवाब नहीं दिया।

शेखर ने एक गद्दादार आरामकुर्सी पर हाथ-पैर फैलाकर लेटे-लेटे वही सवाल दोहराया। कहा—लौटना कब हुआ था—दो बजे? तीन बजे? मुँह से बोल क्यों नहीं निकलता?

ललिता फिर भी उसी तरह चुपचाप खड़ी रही।

शेखर ने खिजलाकर कहा—नीचे जाओ, मा बुला रही हैं।

भुवनेश्वरी भण्डार की कोठरी के सामने बैठी जलपान का सामान रकाबी में रख रही थीं। ललिता ने पास आकर पूछा—मुझे बुला रही थीं मा?

"कहाँ, मैंने तो नहीं बुलाया!" कहकर सिर उठाकर ललिता का मुख देखते ही उन्होंने कहा—तेरा चेहरा ऐसा सूखा हुआ क्यों है ललिता? जान पड़ता है, आज अभी तक तूने कुछ खाया-पिया नहीं—क्यों न?

ललिता ने गरदन हिलाई।

भुवनेश्वरी बोलीं—अच्छा, जा अपने दादा को जलपान का सामान देकर जल्दी मेरे पास आ।

ललिता ने दम भर बाद मिठाई की रकाबी और जल का गिलास लिये हुए ऊपर आकर कमरे में देखा, शेखर अभी तक उसी तरह आँखें मूँदे लेटा हुआ है। दफ्तर के कपड़े भी नहीं उतारे। न हाथ और मुँह ही धोया। पास आकर धीरे से उसने कहा--जल-पान का सामान लाई हूँ।

शेखर ने आँखें खोले बिना ही कह दिया--कहीं रख जाओ।

मगर ललिता ने रक्खा नहीं। वह हाथ में लिये चुप-चाप खड़ी रही।

शेखर को आँखें न खोलने पर भी मालूम पड़ रहा था कि ललिता वहीं खड़ी है, गई नहीं। दो-तीन मिनट चुप रहने के बाद शेखर ही फिर बोला--कब तक इस तरह खड़ी रहोगी ललिता? मुझे अभी देर है; रख दो और नीचे जाओ।

ललिता चुपचाप खड़ी-खड़ी मन में बिगड़ रही थी। मगर उस भाव को दबाकर कोमल स्वर में बोली—देर है, तो होने दो, मुझे भी तो इस समय नीचे कोई काम नहीं करने को है।

अब की शेखर ने आँखें खोलकर देखा, और हँसते हुए कहा—भला मुँह से बोल तो फूटा!—नीचे काम नहीं है, तो

बग़लवाले घर में बहुत काम होगा। वहाँ भी न हो तो उसके आगे के घर में काम की कमी न होगी। तुम्हारा घर एक ही तो नहीं है ललिता!

"सो तो है ही" कहकर ललिता ने क्रोध के मारे मिठाई की रकाबी को तनिक ज़ोर से टेबिल पर रख दिया, और तेज़ी के साथ कमरे के बाहर निकल गई।

शेखर ने पुकारकर कहा—शाम के बाद ज़रा फिर हो जाना।

"सैकड़ों दफ़े ऊपर-नीचे चढ़ना-उतरना मुझसे नहीं हो सकता।" यह कहती हुई वह चली गई।

नीचे आते ही मा ने कहा—अपने दादा को मिठाई और पानी तो दे आई, मगर पान भूल ही गई। फिर जाना पड़ेगा।

"मुझे तो बड़ी भूख लग रही है मा, अब मुझसे ऊपर चढ़ा-उतरा न जायगा, और किसी के हाथ भेज दो पान।"—यह कहने के साथ ही वह लद से नीचे बैठ गई।

ललिता के मनोहर मुख-मण्डल में रोष का असन्तोष झलकता देखकर भुवनेश्वरी ने मन्द मुसकान के साथ कह दिया—अच्छा अच्छा, तू बैठकर खा-पी ले; किसी महरी के ही हाथ भेजे देती हूँ।

ललिता ने फिर कुछ कहा-सुना नहीं—जाकर भोजन करने बैठ गई।

वह उस दिन थियेटर देखने नहीं गई थी—फिर भी शेखर ने उसे बका-झका, यही ललिता को बुरा लगा। इसी पर

रूठकर ललिता चार-पाँच दिन शेखर को नहीं दिखाई दी। मगर शेखर के दफ़्तर जाने पर दोपहर को रोज़ जाकर वह शेखर के कमरे की सफ़ाई वग़ैरह अपना काम सब कर आया करती रही। अपनी ग़लती मालूम होने पर शेखर ने दो दिन बराबर ललिता को बुला भेजा, मगर वह नहीं आई।

४

इस महल्ले में एक बहुत बूढ़ा फ़क़ीर जब-तब भीख माँगने आया करता था। उस पर ललिता की बड़ी दया थी। वह जब आता, तभी उसे ललिता एक रुपया हर बार दिया करती थी। रुपया पाकर वह भिक्षुक जो सम्भव और असम्भव आशीर्वाद देता था, उनको ललिता बड़ी रुचि से सुना करती थी। फ़क़ीर कहता था, ललिता पूर्वजन्म में ज़रूर उसकी सगी मा थी और इस जन्म में ललिता को पहली बार देखते ही उस फ़क़ीर ने इस सत्य को न जाने किस तरह जान लिया—देखते ही उसे निश्चय हो गया कि यह दयामयी बालिका ही उस जन्म की उसकी माता है। ललिता के इस बूढ़े लड़के ने आज सबेरे ही आकर दरवाज़े पर ऊँचे स्वर से आवाज़ दी—मेरी माई, मेरी मैया, कहाँ हैं जी?

सन्तान की पुकार सुनकर आज ललिता मुश्किल में पड़ गई। वह सोचने लगी—इस वक़्त तो शेखर अपने कमरे में मौजूद होंगे, रुपया लाने जाऊँ तो किस तरह जाऊँ? इधर-उधर ताककर ललिता अपनी मामी के पास पहुँची। मामी

अभी-अभी महरी के साथ बकबक-झकझक करके तीन कोने का मुँह बनाये प्रचण्ड रूखे रुख़ से रसोई की तैयारी कर रही थीं। उनसे भी कुछ कहने की हिम्मत ललिता को न हुई। लौट आकर बाहर झाँकी तो देख पड़ा कि भिक्षुक भैया किवाड़ के सहारे लाठी खड़ी करके मज़े से आसन जमाकर बैठे हुए हैं। आज तक किसी दफ़े फ़क़ीर ख़ाली नहीं लौटा। ललिता का मन आज भी इसी लिए फ़क़ीर को निराश करने के लिए राज़ी नहीं होता था।

भिक्षुक ने फिर आवाज़ लगाई।

अन्नाकाली ने दौड़ते हुए आकर ख़बर दी—दिदिया, तुम्हारा वही बेटा आया है।

ललिता ने कहा—अरे काली, सुन तो ज़रा। मेरा एक काम कर ला दे बिट्टोरानी। मेरे हाथ ख़ाली नहीं हैं। इसी दम तू दौड़ती हुई शेखर दादा के पास जाकर उनसे एक रुपया माँग ला।

अन्नाकाली तेज़ी से दौड़ी गई और ज़रा सी देर में दौड़ती हुई आ गई। उसने ललिता के हाथ में रुपया रख दिया और कहा—यह लो दिदिया रुपया।

ललिता—शेखर दादा ने क्या कुछ कहा था ?

काली—कुछ नहीं। मुझसे कोट की जेब से रुपया निकाल लेने को कहा था, सो मैं निकाल लाई हूँ।

ललिता—और कुछ नहीं कहा ?

"नहीं, और कुछ नहीं" कहकर गरदन हिलाकर अन्ना-काली अपने खेल की धुन में चल दी।

ललिता ने रुपया देकर फ़क़ीर को विदा किया; लेकिन आज और दिन की तरह खड़े रहकर उसकी लच्छेदार मज़ेदार बातें नहीं सुन सकी—अच्छी ही नहीं लगीं।

इधर कई दिनों से ताश के खेल की बैठक पूरे जोश और उमङ्ग के साथ सरगरम हो रही थी। मगर आज दोपहर को ललिता वहाँ नहीं गई—सिर के दर्द का बहाना करके लेट रही। आज सचमुच ही उसका जी बहुत ही ख़राब हो गया था। तीसरे पहर अन्नाकाली को पास बुलाकर उसने पूछा—अच्छा काली, तू अपना सबक़ सुनाने के लिए शेखर दादा के पास क्या अब नहीं जाती?

काली ने सिर हिलाकर कहा—जाती क्यों नहीं, रोज़ जाती हूँ।

ललिता—मेरे बारे में शेखर दादा तुमसे कुछ नहीं पूछते?

काली—नहीं तो—हाँ हाँ, परसों पूछा था—तुम दोपहर को ताश खेलने जाती हो कि नहीं, यही पूछते थे।

ललिता ने घबराकर पूछा—तूने क्या कहा?

काली—यही कह दिया कि तुम दोपहर को रोज़ चारु दिदिया के घर ताश खेलने जाया करती हो। शेखर दादा ने पूछा—कौन-कौन खेलता है? मैंने कहा—तुम। चारु दीदी, और उनके मामा—अच्छा दिदिया, तुम अच्छा खेलती हो

या चारु दीदी के मामा अच्छा खेलते हैं ? परोसिन मौसी तो कहती हैं कि तुम्हीं अच्छा खेलती हो—क्यों ?

ललिता इसका उत्तर न देकर एकाएक बहुत ही खिजला उठी, और बोली—तू यह सब क्यों कहने लगी कुतिया ? तुझे हर एक बात में अपनी टाँग अड़ाने की आदत है। जा, अब मैं तुझे कभी कुछ न दूँगी।

ललिता बिगड़कर चली गई।

काली सन्नाटे में आ गई। ललिता के अचानक इस भावान्तर का कोई कारण बेचारी बालिका कुछ भी न समझ सकी।

मनोरमा का ताश खेलना दो दिन से बन्द है; क्योंकि ललिता नहीं आती। मनोरमा पहले ही से मन में यह सन्देह कर रही थी कि ललिता को देखकर गिरीन्द्र उस पर रीझ गया है। उसका यह सन्देह आज अच्छी तरह मज़बूत हो गया।

गिरीन्द्र के ये दोनों दिन बड़ी बेचैनी से बीते। बहुत ही उत्सुक रहकर और अन्यमनस्क होकर वह दोनों दिन इधर-उधर छटपटाया किया। तीसरे पहर घूमने-फिरने नहीं गया। दम-दम भर पर भीतर आता, और घर भर में यहाँ से वहाँ और वहाँ से यहाँ चक्कर लगाता रहता। तीसरे दिन दोपहर के वक़्त घर में भीतर जाकर उसने बहन से कहा—दिदिया, क्या आज भी खेल न होगा ?

मनोरमा बोली—कैसे होगा भैया, आदमी कहाँ हैं खेलने-वाले? न हो तो आओ, हम तीन ही जने खेलें।

गिरीन्द्र ने इस प्रस्ताव के प्रति कुछ उत्साह न दिखाकर उदास भाव से कहा—तीन आदमियों में कहीं खेल होता है! उस घर की उस लड़की—ललिता—यही तो नाम है शायद—हाँ, सो, उसे बुला भेजो न।

मनो०—वह न आवेगी।

गिरीन्द्र ने खिन्न होकर कहा—क्यों, आवेगी क्यों नहीं? शायद उसके घर के लोगों ने मना कर दिया हो—क्यों?

मनोरमा ने गरदन हिलाकर कहा—नहीं, यह बात नहीं है। उसके मामा-मामी ऐसी तबियत के आदमी नहीं हैं। वह ख़ुद ही नहीं आती।

गिरीन्द्र सहसा प्रसन्न होकर कह उठा—तब तो तुम्हारे एक बार जाने भर की ज़रूरत है। तुम्हारे जाकर ज़िद करने से ज़रूर आवेगी।

कहने को तो बात कह डाली, मगर मुँह से कहने के साथ ही गिरीन्द्र अपने मन में अत्यन्त अप्रतिभ हो उठा।

मनोरमा भी हँस पड़ी। "अच्छा तो यही सही, जाती हूँ" कहती हुई वह चल दी। थोड़ी देर के बाद ललिता को पकड़ लाई। बस, ताश का अड्डा गुलज़ार हो उठा।

दो दिन खेल नहीं हुआ था; आज थोड़ी ही देर में खेल ख़ूब जम गया। ललिता की पार्टी जीतती जाती थी।

दो घण्टे के लगभग खेल होता रहा, इसके बाद अकस्मात् काली आ खड़ी हुई। उसने आते ही कहा—दिदिया, शेखर दादा बुला रहे हैं—चलो—जल्दी।

ललिता का चेहरा पीला पड़ गया। ताश की गड्डी हाथ से रखकर बोली—शेखर दादा क्या आज दफ़्तर नहीं गये?

"क्या मालूम—चले आये हैं" कहकर गरदन हिलाकर काली चल दी।

ललिता ने भी ताश रख दिये, और मनोरमा की ओर कुण्ठित भाव से देखकर कहा—जाती हूँ मौसी।

मनोरमा ने चट उसका हाथ थाम लिया। बोली—यह कैसे हो सकता है जी; दो-चार हाथ तो और खेल लो।

ललिता हड़बड़ाकर उठ खड़ी हुई, और बोली—ना मौसी, देर होने से दादा नाराज़ हो उठेंगे।

ललिता तेज़ी के साथ चली गई।

गिरीन्द्र ने पूछा—शेखर दादा कौन है बहन?

मनो०—वह जो सामने फाटक देख पड़ता है, उसी बड़ी इमारत में रहते हैं।

गिरीन्द्र ने गरदन हिलाकर कहा—वह—वह मकान। नवीन बाबू शायद उनके कोई आत्मीय हैं?

मनोरमा ने लड़की के मुँह की ओर देखकर मुसकिराकर कहा—आत्मीय कैसे! ललिता के मामा की यह बाप-दादे की झोपड़ी तक तो यह बूढ़ा हड़प लेने की ताक में है।

गिरीन्द्र आश्चर्य-चकित भाव से बहन की ओर ताकने लगा।

मनोरमा तब सारा क़िस्सा कह चली। किस तरह गत वर्ष रुपयों की तंगी के मारे गुरुचरण बाबू की मँझली लड़की का व्याह रुका हुआ था, उस अवसर पर बेहद सूद पर बूढ़े नवीन राय ने रुपये उधार देकर घर रेहन रख लिया, सब कह सुनाया। यह भी कहना नहीं भूली कि क़र्ज़ की रक़म कभी अदा नहीं होने की, और अन्त को यह घर नवीन राय ही हथिया लेंगे।

सारी कहानी कहकर अन्त को मनोरमा ने अपनी यह टिप्पणी जड़ी कि बूढ़े की दिली मंशा यह है कि ग़रीब गुरु-चरण का घर गिरवाकर इसी जगह छोटे लड़के शेखर के लिए एक बड़ा-सा महल बनवा दें। अन्य दो लड़कों के लिए दो अलग-अलग घर मौजूद हैं, तीसरे ही के लिए नहीं है। बूढ़े का मतलब बुरा नहीं है।

सम्पूर्ण इतिहास सुनकर गिरीन्द्र को खेद हुआ। उसने पूछा—अच्छा दीदी, गुरुचरण बाबू के तो और भी लड़कियाँ अभी व्याहने को हैं—उनका व्याह वे किस तरह करेंगे ?

मनोरमा ने कहा—अपनी लड़कियाँ तो हैं हीं, उनके अलावा यह भानजी ललिता भी है। वे मा-बाप की अनाथ, असहाय होने के कारण उसका भी बोझ इसी ग़रीब मामा के

सिर पर है। सयानी हो चली है। इसी साल ब्याह हो जाना चाहिए, चाहे जिस तरह हो। इस पुरानी परिपाटी वाले समाज में—गुरुचरण बाबू की जाति-बिरादरी में—सहायता करने को कोई नहीं है, और बिरादरी से अलग करने-वाले, ज़रासा भी पुरानी रीति-नीति का पालन न कर पाने पर आहार-व्यवहार बन्द करनेवाले सभी हैं। हम ब्रह्म-समाजी लोग बड़े मज़े में हैं गिरीन्।

गिरीन्द्र चुप रहा। मनोरमा कहने लगी—उस दिन ललिता के ही बारे में बातें करते-करते उसकी मामी मेरे आगे रोने लगी थी। किस तरह कहाँ से क्या होगा, कुछ ठिकाना नहीं। इस भानजी के ब्याह की चिन्ता के मारे गुरुचरण बाबू का खाना-पीना छूटा हुआ है। हाँ रे गिरीन, मुँगेर में तेरे बहुत यार-दोस्त और जान-पहचान के लड़के होंगे। क्या कोई ऐसा तेरा इष्ट-मित्र नहीं जो ख़ाली लड़की का रूप-गुण देखकर ब्याह करने के लिए तैयार हो? सचमुच ऐसी सुशील, सुघर और सुन्दर लड़की मिलना मुश्किल है। लाखों में एक है।

गिरीन्द्र ने विषाद के भाव से भरी फीकी हँसी हँसकर कहा—इष्ट-मित्र ऐसा कहाँ पाऊँगा दीदी—हाँ, रुपये देकर मैं इस काम में सहायता कर सकता हूँ।

गिरीन्द्र के बाप डाक्टर थे। उनकी ख़ूब चलती थी। डाक्टरी के धन्धे में कमाकर वे बहुत रुपये और जायदाद

Love

छोड़ गये हैं। अब उस दौलत और जायदाद का मालिक अकेला गिरीन्द्र ही है।

मनोरमा ने कहा—तू रुपये उधार देगा ?

गिरीन्द्र ने कहा—उधार क्या दूँगा दीदी—हाँ, अगर उनका जी चाहे तो जब हो सके, अदा कर देंगे, और न हो सके तो न सही।

मनोरमा को आश्चर्य हुआ। कहा—मगर इस तरह रुपये देने से तुझे क्या लाभ ? ये लोग न तो हमारे सगे सम्बन्धी ही हैं, और न हमारे समाज के आदमी ही। इस तरह कौन किसे रुपये दे डालता है ?

गिरीन्द्र अपनी बहन के मुँह की ओर देखकर हँसने लगा। उसके बाद बोला—समाज के आदमी नहीं हैं न सही; बंगाली तो हैं ? इनके घर रुपयों की बे तरह कमी है, इधर मेरे पास बेशुमार धन बेकार पड़ा है। तुम ज़रा एक दफ़े उनसे यह ज़िक्र करके देखो तो—अगर वे लेने को राज़ी हों तो मैं तैयार हूँ। ललिता असल में न उन्हीं की कोई है, न हमारी ही। उसके ब्याह का सारा ख़र्च, न हो, मैं ही दे दूँगा।

गिरीन्द्र की बातें सुनने से मनोरमा को कुछ विशेष प्रसन्नता या सन्तोष नहीं हुआ। अवश्य ही इसमें उसका अपना कुछ हानि-लाभ न था, तो भी अधिकांश स्त्रियों का यही स्वभाव देख पड़ेगा कि वे इस तरह किसी को एक ग़ैर आदमी के हाथ

इतने रुपये देने के लिए तैयार देख प्रसन्न मन से उसका अभि-नन्दन नहीं कर सकतीं।

चारु अब तक चुपकी बैठी सब बातचीत सुन रही थी। गिरीन्द्र को रुपये देने के लिए तैयार सुनकर वह मारे ख़ुशी के उछल पड़ी। बोली—यही करो मामा, मैं जाकर मौसी से कह आती हूँ।

चारु की मा ने उसे धमकाकर कहा—तू बैठ चारु—तुम्हारे जैसे छोटे बच्चों को बड़ों की इन बातों में दख़ल देने की ज़रूरत नहीं। ज़रूरत होगी तो मैं ही जाकर कहूँगी।

गिरीन्द्र ने कहा—यही करो दीदी। परसों सड़क पर खड़े ही खड़े गुरुचरण बाबू के साथ मेरी योंही कुछ बात-चीत हुई थी। उससे तो जान पड़ा कि वे अच्छे और सीधे-सादे आदमी हैं। तुम्हारी क्या राय है?

मनोरमा ने कहा—मैं भी यही कहती हूँ। मैं क्या, सभी कहते हैं। वे दोनों ही—औरत और मर्द—बड़े सीधे और सज्जन हैं। इसी लिए तो और भी दुःख होता है गिरीन्द्र कि ऐसे देवता मनुष्य को शायद जल्दी ही पुरखों का घर छोड़कर निराश्रय होना पड़ेगा। इसका प्रमाण तूने देखा नहीं गिरीन्द्र, शेखर बाबू के पुकारने की ख़बर सुनते ही ललिता कैसी घबराकर उठ खड़ी हुई, और भागी। ललिता ही क्या, उस घर के सभी लोग मानो शेखर के घरवालों के हाथ बिक गये हैं। लेकिन ख़ुशामद चाहे जितनी करें, एक बार

बाद लड़की-लड़कों के साथ सड़क पर निकल खड़े होने की नौबत आवेगी--गली-गली की ठोकरें खाते फिरना होगा। उस समय तो समाज का कोई आदमी आकर इतना भी नहीं कहेगा कि आओजी, चलो, तुम हमारे घर में रहो—हम तुम्हें आश्रय देंगे। क्यों जी, ठीक है न ?

गिरीन्द्र मौन-समर्थन करता हुआ चुप ही रहता था। गुरुचरण उसी सिलसिले में कहे जाते थे—तुम्हारा कथन सोलहों आने सच है भैया। ऐसे समाज का शासन मानकर उसके भीतर रहने की अपेक्षा उसे छोड़ देना हज़ार दर्जे अच्छा है। प्रपञ्ची पञ्चों की वञ्चना से बचने में ही भला है। खाने को मिले या न मिले, शान्ति के साथ रहेंगे तो। जो समाज दीन-दुखी, दरिद्र का दुःख नहीं देखता, विपत्ति के समय साहस नहीं बढ़ाता, केवल आँखें लाल-पीली करता और गला दबाने के लिए तैयार रहता है, उस समाज के भीतर मेरे लिए स्थान नहीं है; वह समाज मुझ-सरीखे दुखियों या ग़रीबों के लायक़ नहीं है। वह अमीरों और बड़े आदमियों के लिए है। अच्छी बात है, वे ही उसमें रहें, हमारा कुछ काम नहीं है।—इसी तरह कहते-कहते वे आप ही चुप हो जाया करते थे।

युक्तियुक्त तर्क-शैली के साथ उपर्युक्त उदार उक्तियों को ललिता प्रायः प्रतिदिन मन लगाकर सुनती थी। केवल सुनती ही न थी, रात को जब तक नींद न आती तब तक बिछौने

पर पड़ी-पड़ी मन में उसी चर्चा के विषय में विचार किया करती थी। प्रत्येक वाक्य उसके हृदय-पटल में गहरी छाप डालता हुआ अच्छी तरह अङ्कित हो जाता था। वह अपने मन में कहती थी, गिरीन्द्र बाबू की बातें बहुत ही न्याय-सङ्गत हैं।

ललिता मामा को बहुत चाहती थी। उसी मामा को अपने पक्ष में लाकर गिरीन्द्र जो कुछ भी कहता था, सब ललिता को अभ्रान्त सत्य प्रतीत होता था। उसका मामा, इन दिनों, ख़ास कर उसी के लिए हैरान हो रहा है, इसी क्षमता-तीत आशातीत कठिन कर्तव्य-पालन की उद्विग्न उत्कण्ठा में उसने अन्न-जल छोड़-सा दिया है। यह सब उसी के कारण तो हो रहा है—उसे आश्रय देने ही से तो किसी से विरोध न करनेवाला उसका ग़रीब दुखिया मामा इतना क्लेश पा रहा है! किन्तु यह सब किसलिए? उसका ब्याह जल्दी न कर सकने से मामा जातिच्युत क्यों होगा? उसको समाज से बहिष्कृत क्यों होना पड़ेगा? ललिता सोचने लगी—आज मेरा ब्याह कर देने के बाद दैवसंयोग से अगर कल ही मैं विधवा होकर इसी घर में लौट आऊँ, तब तो मामा जातिच्युत न होंगे! किन्तु इन दोनों स्थितियों में अन्तर कुछ भी नहीं है।

ये सब उक्तियाँ और युक्तियाँ गिरीन्द्र की थीं। उसकी इन बातों की प्रतिध्वनि को अपने भावातुर हृदय से निकालकर

और एक बार अच्छी तरह आलोचना करते-करते ललिता सो जाया करती थी।

ललिता के मामा की ओर होकर, मामा के दुःख में सहानुभूति दिखाकर जो कोई कुछ कहता था उस पर श्रद्धा किये बिना, उसके मत के साथ अपना मत मिलाये बिना ललिता से रहा न जाता था। इसके सिवा उसके लिए और राह ही न थी। इसी कारण वह गिरीन्द्र पर आन्तरिक श्रद्धा करने लगी।

क्रमशः यह हाल हो गया कि गुरुचरण की तरह वह भी शाम को चाय पीने के समय की प्रतीक्षा करने लगी। उस समय के लिए वह भी उत्सुक रहने लगी।

पहले पहल गिरीन्द्र ललिता से बातचीत करते समय उसे 'आप' कहा करता था। एक दिन गुरुचरण ने मना कर दिया। कहा—उसे 'आप' क्यों कहते हो गिरीन्द्र, 'तुम' कहा करो। उसी दिन से गिरीन्द्र ने 'आप' की जगह 'तुम' का प्रयोग शुरू कर दिया।

एक दिन गिरीन्द्र ने पूछा—ललिता, तुम चाय नहीं पीती?

ललिता ने सिर झुकाकर गरदन हिला दी। गुरुचरण ने उसकी ओर से कहा—उसके शेखर दादा ने मना कर दिया है। वह स्त्रियों का चाय पीना पसन्द नहीं करता।

कारण सुनकर गिरीन्द्र ख़ुश नहीं हुआ, इतना ललिता की समझ में आ गया।

आज शनिवार है। और दिनों की अपेक्षा आज के दिन की बैठक अधिक देर तक रहती थी। चाय पीने का काम समाप्त हो चुका था, बातचीत हो रही थी। गुरुचरण आज की बातचीत में वैसे उत्साह के साथ शामिल नहीं हो पाते थे। बीच-बीच में कुछ अन्यमनस्क से हो जाते थे।

गिरीन्द्र ने सहज ही इस पर लक्ष्य करके पूछा—जान पड़ता है, आज आपकी तबियत ठीक नहीं है?

गुरुचरण ने हुक्के को मुँह से हटाकर कहा—क्यों? मेरा शरीर तो बहुत अच्छा है।

गिरीन्द्र ने कुछ संकोच के साथ कहा—तो शायद दफ़्तर में कुछ—

"नहीं जी, यह भी कुछ नहीं है" कहकर गुरुचरण ने कुछ विस्मय के साथ गिरीन्द्र के मुख पर नज़र डाली। बाहर चेहरे पर मन के भीतर की घबराहट और चिन्ता जो झलक रही थी, उसकी कुछ ख़बर ही इस अत्यन्त सरल स्वभाव के मनुष्य को नहीं थी।

ललिता पहले पहल तो बिलकुल ही चुपकी बैठी रहा करती थी, किन्तु आजकल बीच-बीच में दो-एक बातें वह भी कह बैठती है। उसने कहा—हाँ मामा, आज शायद आपकी तबियत कुछ ख़राब है।

गुरुचरण ने हँसकर कहा—अच्छा, यह बात है! हाँ बेटी, तू ने ठीक ताड़ लिया। आज मेरा मन सचमुच अच्छा नहीं है।

ललिता और गिरीन्द्र, दोनों उनके मुख की ओर देखने लगे।

गुरु०—नवीन दादा मेरा सब हाल जानते हैं। फिर भी उन्होंने आज सरेराह खड़े होकर दो-चार कड़ी बातें सुना दीं। मगर इसमें उनका क्या क़सूर। छः-सात महीने बीत गये, एक पैसा सूद का नहीं दे सका, असल की कौन कहे।

सारा मामला ललिता समझ गई। वह बात टालने के लिए व्यग्र हो उठी। उसके भोलानाथ मामा को यह सलीक़ा नहीं है कि कब किसके आगे कौन सी बात न कहनी चाहिए। वे कहीं अपने घर की वह बात, जिसका ज़ाहिर होना लज्जा-जनक है, एक ग़ैर आदमी के आगे न कह बैठें, इस भय से वह चटपट कह उठी—इसके लिए तुम कुछ चिन्ता न करो मामा, ये बातें फिर होंगी।

लेकिन गुरुचरण ने इस इशारे पर ध्यान ही नहीं दिया। वे विषादपूर्ण हँसी हँसकर कहने लगे—फिर क्या होगा बेटी? यह बात नहीं है भैया गिरीन्द्र! मेरी यह लड़की चाहती है कि यह बुड्ढा किसी तरह की चिन्ता न करे। मगर बाहर के लोग तो तेरे इस दुखी दरिद्र मामा के दुःख की ओर आँख उठाकर देखना ही नहीं चाहते ललिता!

गिरीन्द्र ने पूछा—नवीन बाबू ने आज क्या कहा?

ललिता को यह क्या मालूम कि गिरीन्द्र उसके घर का सब भीतरी हाल जानता है। इसी से उसके इस प्रश्न को अत्यन्त असङ्गत समझकर वह अपने मन में उस पर क्रोधित हो उठी।

गुरुचरण ने अपना सब कच्चा चिट्ठा कह सुनाया। नवीन राय की घरवाली को बहुत दिनों से अजीर्ण रोग था। यों तो अर्से से भुगत रही थीं, लेकिन हाल में रोग ने अधिक ज़ोर पकड़ा है। व्याधि-वृद्धि देखकर चिकित्सकों ने राय दी है कि कुछ समय के लिए किसी स्वास्थ्यकर स्थान में जाकर आब-हवा बदलना बहुत ज़रूरी है। इस व्यवस्था के अनुसार काम करने के लिए धन का प्रयोजन जानकर नवीन बाबू ने आज गुरुचरण से सख़्त तक़ाज़ा किया है। गुरुचरण को इस समय सूद की सारी रक़म और थोड़े-बहुत असल के रुपए भी, चाहे जैसे हो, देने ही पड़ेंगे।

गिरीन्द्र ने दम भर चुप रह कर कोमल स्वर से कहा—देखिए, आपसे एक बात कहनी है। मैं कई दफ़े कहते-कहते रह गया। अगर कुछ बुरा न मानिए और आज्ञा दीजिए तो कहूँ।

गुरुचरण ने हँसकर कहा—मैंने तो आजतक कभी किसी को अपने से कोई बात कहने में संकोच करते नहीं देखा गिरीन्द्र। कहो, क्या बात है?

गिरीन्द्र ने कहा—दिदिया एक दिन कह रही थीं कि नवीन बाबू बड़ा कड़ा सूद लेते हैं। सुनकर मैंने सोचा, आप इतना सूद क्यों दें। मेरा कहना है कि मेरे पास बहुत रुपया बेकार पड़ा है, किसी काम में नहीं लगा, और इधर नवीन बाबू को इस समय रुपयों की ज़रूरत भी है;

इसलिए न हो तो उनके ऋण का भार सिर से उतार ही न डालिए।

ललिता और गुरुचरण, दोनों अत्यन्त आश्चर्य के साथ गिरीन्द्र की ओर ताकने लगे। गिरीन्द्र ने अत्यन्त सङ्कोच के साथ कहना शुरू किया—मुझे इस वक्त रुपयों की विशेष आवश्यकता नहीं है, इसलिए जब आपको सुबीता हो तब दीजिएगा—कोई जल्दी नहीं है। नवीन बाबू को ज़रूरत है, इसी लिए मैं कहता हूँ, अगर—

गुरुचरण ने कहा—कुल रुपये तुम दोगे?

गिरीन्द्र ने सिर झुकाकर कहा—अच्छा तो है, वक्त पर रुपये मिलने से उन लोगों का उपकार भी होगा—

इसके प्रत्युत्तर में गुरुचरण कुछ कहना चाहते थे कि इसी समय अन्नाकाली दौड़ी हुई आई, और बोली—"छोटी दिदिया, शेखर दादा ने जल्दी कपड़े पहनकर तैयार होने के लिए कहा है—थिएटर देखने जाना है।" इतना कहकर वह बालिका जैसे आई थी वैसे ही दौड़ती चली गई। उसकी उत्सुकता और उतावली देखकर गुरुचरण हँसने लगे, मगर ललिता जहाँ की तहाँ बैठी रही, उठी नहीं।

दम भर में फिर अन्नाकाली ने आकर कहा—तुम अभी तक नहीं उठीं, हम सब लोग तो तुम्हारी राह देख रहे हैं।

फिर भी ललिता के उठने का कोई लक्षण न देख पड़ा। वह अन्त तक सुन जाना चाहती है। किन्तु गुरुचरण ने

काली की ओर देखकर, तनिक मुसकिराकर, ललिता के सिर पर हाथ रखकर कहा—तो फिर जा बेटी, देर न कर—तेरे ही लिए, जान पड़ता है, सब खड़े राह देख रहे हैं।

लाचार होकर ललिता को उठना पड़ा; किन्तु जाने के पहले वह जो गहरी कृतज्ञता जतानेवाली दृष्टि गिरीन्द्र के मुख पर डाल गई, उसे गिरीन्द्र ने अच्छी तरह देख लिया।

दस-बारह मिनट के बाद कपड़े वग़ैरह पहनकर, तैयार होकर, पान देने के बहाने ललिता और एक बार दबे-पैरों बाहर की बैठक में आई।

गिरीन्द्र चला गया था। गुरुचरण अकेले गाव-तकिये पर सिर रक्खे, आँखें मूँदे पड़े थे। उनकी बन्द आँखों के कोनों से जो आँसू बह रहे थे उन्हें देखकर ललिता समझ गई कि ये आँसू आनन्द के हैं और इसी कारण मामा को उसी अवस्था में रहने देकर जैसे चुपके से आई थी वैसे ही चली गई।

वहाँ से जब ललिता शेखर के घर पहुँची, तब उसकी आँखें भी आँसुओं से भरी हुई थीं। अन्नाकाली वहाँ न थी; वह सबसे पहले जाकर गाड़ी में बैठ गई थी। अकेला शेखर अपने कमरे के भीतर चुपचाप खड़ा था। शायद ललिता की प्रतीक्षा कर रहा था। सिर उठाकर देखा तो ललिता की आँसू-भरी आँखें देख पड़ीं।

आठ-दस दिन से ललिता को न देखने से शेखर अपने मन में बहुत ही नाराज़ हो रहा था; लेकिन इस समय सब कुछ भूलकर वह घबराकर कह उठा—यह क्या, रोती हो क्या ?

ललिता ने सिर नीचा करके प्रबल वेग से सिर हिलाया।

इधर, इन कई दिनों से ललिता के न देख पड़ने के कारण शेखर के मन में एक प्रकार का परिवर्तन हो रहा था। इसी से उसने पास आकर दोनों हाथों से पकड़कर एकाएक ललिता का मुख ऊपर उठाया, और कहा—ऐं, तुम तो सच-मुच रो रही हो ? बताओ तो, क्या हुआ ?

अब और अधिक अपने को सँभाल रखना असम्भव हो उठा। ललिता उसी जगह बैठ गई, और आँचल से मुँह ढककर रोने लगी।

६

नवीन राय ने सब सूद और असल की पाई-पाई हिसाब लगाकर गिन ली, और फिर तमस्सुक लौटाते हुए गुरुचरण से कहा—क्यों जी, ये रुपये तुमको किसने दिये ?

गुरुचरण ने नम्र भाव से कहा—यह न पूछिए दादा, कहने की मनाही है।

अपने रुपये वसूल होने से नवीन राय तनिक भी सन्तुष्ट नहीं हुए। इसकी तो उन्हें न आशा थी, न इच्छा। बल्कि उन्होंने तो गुरुचरण के घर को गिरवाकर वहाँ कैसे नक्शे की

नई इमारत खड़ी करेंगे, यह सोचकर ठीक कर रक्खा था। गुरुचरण का उत्तर सुनकर ताने के साथ बोले—सो अब तो मनाही होगी ही। भाई साहब, दोष तुम्हारा नहीं, मेरा है। मैंने रुपयों का तगादा किया, यही मेरी ख़ता है। ऐसा न हो तो फिर कलिकाल की करामात ही क्या!

गुरुचरण बहुत व्यथित होकर बोले—यह क्या कहते हो दादा! आपका ऋण ही तो चुका सका हूँ, आपकी दया का ऋण तो मुझपर बना ही रहेगा—उसे तो मैं कभी किसी तरह नहीं चुका सकूँगा।

नवीन बाबू हँसने लगे। वे पक्के उस्ताद ठहरे; अगर ऐसे चतुर, चण्ट-चालाक न होते, अगर ऐसी बातों पर विश्वास कर लिया करते, तो गुड़ बेचकर आज इतनी जमा कभी न जमा कर पाते। सुनकर बोले—कहने को चाहे जो कहो, लेकिन जो तुम सचमुच यही सोचते भैया, तो इस तरह हिसाब न चुका देते। माना, मैंने एक बार तुमसे तगादा ही किया—वह भी तुम्हारी भाभी की बीमारी के लिए, कुछ अपने लिए नहीं—ख़ैर, यह तो बताओ भला, कितने सूद पर घर रेहन रक्खा है?

गरदन हिलाकर गुरुचरण ने कहा—न तो घर ही रेहन रक्खा है दादा और न सूद की ही कुछ बात हुई है।

बुड्ढे ने इस पर विश्वास नहीं किया। बोला—ऐं! ख़ाली हथ-उधार इतने रुपये?

गुरु०—हाँ दादा, एक तरह से यही समझना चाहिए। लड़का बड़ा सज्जन है—बड़ा ही दयालु है।

"लड़का! कौन लड़का है जी?"

इस प्रश्न का कुछ उत्तर गुरुचरण न दे सके, चुप हो रहे। जितनी बात मुँह से निकल गई, उतनी भी कहना मुनासिब न था।

नवीन बाबू गुरुचरण के मन का भाव ताड़ गये। ज़रा मुसकिराकर बोले—ख़ैर, कहने की जब मनाही है तब फिर जाने दो। लेकिन देखो जी, मैं इतनी उमर में दुनिया के बहुत से रङ्ग-ढङ्ग देख चुका हूँ; इसी लिए तुमको अभी से सावधान किये देता हूँ भैया। वह चाहे जो हो, इस तरह उपकार करते-करते कहीं अन्त में कोई बखेड़ा न खड़ा कर दें।

गुरुचरण इसका कुछ जवाब न देकर, नमस्कार करके, तमस्सुक हाथ में लिये उठकर चले आये।

अक्सर, हरसाल ही समझिए, इस फ़सल में भुवनेश्वरी कुछ दिन युक्त प्रदेश की यात्रा में बिताती और उधर ही रहा करती थीं। उनको जो अजीर्ण-रोग था, वह इससे बहुत कुछ मन्दा हो जाता था। इस साल भी उनको वही अजीर्ण की शिकायत थी, मगर इतनी अधिक नहीं जितनी नवीन राय ने गुरुचरण से बताई थी। नवीन राय ने अपना काम बनाने के लिए मसलहतन झूठमूठ बहुत बढ़ाकर रोग के

बारे में कहा था। अस्तु, इधर नवीन बाबू के यहाँ युक्त प्रदेश की यात्रा की तैयारी होने लगी।

उस दिन सबेरे शेखर अपने कमरे में बैठा एक चमड़े के बक्स में अपने शौक़ की चीज़ें और ज़रूरी सामान सहेज-सहेजकर भर रहा था।

इतने में अन्नाकाली ने भीतर आकर कहा—शेखर दादा, तुम लोग कल जाओगे न?

शेखर ने उसकी ओर देखकर कहा—काली ज़रा अपनी छोटी दिदिया को बुला दे। जो कुछ साथ ले जाना हो, सो अभी आकर दे जाय।

ललिता हर दफ़े शेखर की मा के साथ जाया करती थी। शेखर यही जानता था कि वह इस दफ़े भी जायगी।

काली ने गर्दन हिलाकर कहा—अबकी छोटी दिदिया नहीं जायँगी।

शेखर—क्यों? क्यों न जायगी?

काली—वाह, कैसे जायँगी? माघ-फागुन ही में उनका ब्याह होनेवाला है—बाबूजी लड़का खोज रहे हैं।

शेखर जैसे सन्नाटे में आ गया। एकटक शून्य दृष्टि से ताकने लगा।

घर में जो कुछ सुना था वही काली उत्साह के साथ शेखर के आगे कहने लगी—गिरीन्द्र बाबू ने कहा है कि ब्याह में जितने रुपये लगेंगे, सब वे देंगे; मगर लड़का अच्छा

होना चाहिए। बाबूजी आज भी दफ्तर न जायँगे। खा-पीकर कहीं लड़का देखने जायँगे। उनके साथ गिरीन्द्र बाबू भी जायँगे।

शेखर चुपचाप सुनने लगा। ललिता आजकल क्यों नहीं आना चाहती, इसका कारण भी कुछ थोड़ा सा उसकी समझ में आ गया।

काली कहने लगी—गिरीन्द्र बाबू बड़े भले आदमी हैं शेखर दादा। मँझली दिदिया के ब्याह के समय हमारा घर ताऊजी के यहाँ गिरो रख दिया गया था कि नहीं। बाबूजी कहते थे कि और दो-चार महीने बीतते ही हम लोगों को घर से निकलकर राह-राह भीख माँगते फिरना पड़ता। इसी से गिरीन्द्र बाबू ने ताऊजी के सब रुपये दे दिये। बाबूजी कल ही तो सब रुपये ताऊजी को दे गये हैं। छोटी दिदिया कहती थी कि अब हमें कुछ डर नहीं है—सच है न शेखर दादा?

शेखर कुछ भी उत्तर न दे सका। उसी तरह ताकता रहा।

काली ने पूछा—क्या सोच रहे हो शेखर दादा?

अबकी शेखर चौंक पड़ा, और चटपट कह उठा—कुछ नहीं। काली, तनिक अपनी छोटी दिदिया को जल्दी बुला तो ला। कहना, मैं बुला रहा हूँ। जा, जल्दी से दौड़ती हुई जा।

काली दौड़ती चली गई।

शेखर उस खुले हुए सन्दूक की ओर नज़र जमाये बैठा रहा। इस समय उसको यह होश न था कि उसे कौन सी चीज़ चाहिए और कौन सी नहीं; क्या ज़रूरी है और क्या फ़ाल्तू। उसकी आँखों के आगे सब एकाकार हो गया।

अपनी बुलाहट सुनकर ललिता ने ऊपर आ पहले खिड़की की झिरी से झाँककर देखा, उसका शेखर दादा फ़र्श पर एकटक धरती की ओर ताकता हुआ स्थिर भाव से बैठा है। शेखर के मुख का ऐसा भाव उसने आज के पहले कभी नहीं देखा था। ललिता को आश्चर्य हुआ, और साथ ही भय भी। धीरे-धीरे पास आकर उसके खड़े होते ही "आओ" कहकर शेखर व्यस्तभाव से खड़ा हो गया।

ललिता ने धीरे-धीरे पूछा—मुझको बुलाया था?

"हाँ" कहकर क्षणभर चुप रहने के बाद शेखर ने फिर कहा—कल सवेरे की ट्रेन से ही मैं मा को लेकर प्रयाग जाऊँगा। अबकी लौटना शायद देर में हो। यह लो चाभी—तुम्हारे ख़र्च के लिए रुपये-पैसे सब इसी दराज़ में हैं।

हर साल ललिता भी साथ जाती थी। पिछले साल इसी यात्रा के लिए उसने कैसे आनन्द और उत्साह के साथ सब सामान बाँध-बूँधकर चटपट तैयारी कर ली थी! और अबकी वही काम अकेले शेखर दादा को करना पड़ रहा है। खुले हुए सन्दूक पर नज़र पड़ते ही ललिता को इन बातों का ख़याल हो आया।

शेखर ने उसकी ओर से मुँह फेरकर एक बार खाँसकर, गला साफ़ करके, कहा—देखो, सावधानी से रहना; और अगर किसी तरह की आवश्यकता आ पड़े तो दादा से पता पूछकर मुझे चिट्ठी लिखना।

इसके बाद दोनों ही जने चुप। इस दफ़े ललिता साथ नहीं जायगी, यह ख़बर शेखर दादा को मिल गई—और शायद उसके न जाने का कारण भी उन्होंने सुन लिया होगा, यह ख़याल करके ललिता लज्जा-संकोच से गड़ी सी जा रही थी।

एकाएक शेखर ने कहा—अच्छा, अब जाओ; मुझे यह सब सामान रखना है। दिन चढ़ चला—मुझे ज़रा ऑफ़िस भी जाना पड़ेगा।

ललिता खुले सन्दूक़ के सामने घुटने टेककर बैठ गई और बोली—तुम जाकर स्नान करो, मैं सब रक्खे देती हूँ।

"नेकी और पूछ-पूछ!" शेखर ने चाभियों का गुच्छा ललिता के पास फेंक दिया। कमरे के बाहर जाकर एकाएक रुककर उसने कहा—मुझे क्या-क्या दरकार होगा, यह तुम भूल तो नहीं गई हो?

ललिता सिर झुकाकर सन्दूक़ के भीतर की चीज़ें देखने लगी—शेखर की बात का कुछ जवाब नहीं दिया।

शेखर ने नीचे जाकर मा से पूछा, तो मालूम पड़ा कि काली की कही बातें सच हैं। गुरुचरण ने अपना क़र्ज़ा अदा

कर दिया—यह भी सच है, और विशेष रूप से ललिता के लिए लड़के की तलाश हो रही है, यह भी ठीक है। फिर और कुछ न पूछकर शेखर नहाने चला गया।

दो घण्टे के बाद, स्नान-भोजन आदि से छुट्टी पाकर, आफ़िस जाने की पोशाक पहनने के लिए अपने कमरे में घुसते ही उसने जो देखा, उससे वह सचमुच दङ्ग हो गया।

यह दो घण्टे का समय योंही बीत गया, इस बीच में ललिता ने कुछ भी नहीं किया। वह सन्दूक़ के एक कोने पर सिर रक्खे चुपचाप बैठी हुई थी। शेखर के पैरों की आहट से चौंककर सिर उठाया, और उसी दम गरदन झुका ली। उसकी आँखें रोते-रोते गुड़हल के फूल जैसी लाल हो गई थीं।

किन्तु शेखर ने इधर देखकर भी नहीं देखा। आॅफ़िस की पोशाक पहनते-पहनते उसने सहज भाव से कहा—"इस वक्त न कर पाओगी ललिता, दोपहर को आकर सब रख देना।" इतना कहकर वह कपड़े पहनकर आॅफ़िस चल दिया। उसने ललिता की आँखें लाल हो जाने का कारण ठीक-ठीक समझ लिया था; किन्तु सब पहलुओं पर अच्छी तरह विचार किये बिना, इस बारे में पूर्ण रूप से सोचे-समझे बिना और अधिक कुछ कहने का साहस नहीं किया।

उस दिन तीसरे पहर मामा वग़ैरह को चाय देने के लिए बैठके में आते ही ललिता सिटपिटा सी गई। कारण यह

था कि आज वहाँ शेखर भी मौजूद था। यात्रा के प्रथम वह गुरुचरण से भेंट करने आया था।

ललिता ने सिर नीचा करके दो प्याली चाय बनाकर गिरीन्द्र के और मामा के आगे रख दी। यह देखकर गिरीन्द्र ने कहा—शेखर बाबू को चाय न दोगी ललिता ?

ललिता ने बिना सिर उठाये ही धीमे स्वर में कहा—शेखर दादा नहीं पीते।

गिरीन्द्र ने फिर और कुछ नहीं कहा। ललिता ने शेखर के बारे में एक दिन कहा था कि शेखर ख़ुद भी चाय नहीं पीते, और औरों का भी यह शौक़ नहीं पसन्द करते। इस समय इसकी गिरीन्द्र को याद हो आई थी।

चाय की प्याली हाथ में लेकर गुरुचरण ने ललिता के लिए देखे गये लड़कों की चर्चा चलाई। आज जिस लड़के को देखने गये थे, उसके बारे में "लड़का बी० ए० में पढ़ता है, अच्छा है" इत्यादि कहकर ख़ूब तारीफ़ करने के बाद अन्त में कहा—फिर भी हमारे गिरीन्द्र को पसन्द नहीं आया। यह ज़रूर है कि लड़का देखने में वैसा सुन्दर, सुडौल नहीं है, लेकिन मैं तो यही कहूँगा कि मर्द-बच्चे का रूप ब्याह के अलावा और कौन अवसर पर किस काम आता है। मर्द के तो गुण ही देखे जाते हैं।

गुरुचरण तो इतना ही चाहते थे कि किसी तरह लड़की का ब्याह हो जाय। यही बहुत है।

शेखर के साथ गिरीन्द्र का आज यहीं साधारण स्वल्प परिचय हुआ था। गिरीन्द्र की ओर देखकर शेखर ने मन्द हास्यपूर्वक कहा—गिरीन्द्र बाबू को क्यों नहीं पसन्द हुआ? लड़का पढ़-लिख रहा है, अवस्था भी अच्छी है—यही तो सुपात्र है!

शेखर ने यह पूछा ज़रूर, लेकिन गिरीन्द्र के नापसन्द होने का भीतरी रहस्य वह जान गया था; उसने समझ लिया था कि क्यों यह लड़का नहीं पसन्द आया है, भविष्य में भी कोई पसन्द न होगा। मगर गिरीन्द्र से एकाएक इस प्रश्न का उत्तर न देते बन पड़ा। उसका चेहरा कुछ सुर्ख़ हो उठा। शेखर ने उस पर भी लक्ष्य किया। वह उठ खड़ा हुआ। बोला—काकाजी, कल मा को लेकर प्रयाग की ओर जाता हूँ। शुभ कार्य में ठीक वक़्त पर ख़बर देना कहीं भूल न जाइएगा।

"भला यह कैसे हो सकता है भैया! मेरे तो तुम्हीं लोग सब कोई हो। इसके अलावा ललिता की मा के बिना तो कोई काम ही नहीं हो सकेगा।—क्यों न बेटी?" यों कहकर हँसते हुए गुरुचरण ने ललिता की ओर मुँह फेरा।

ललिता को न देखकर बोले—वह यहाँ से कब उठ गई?

शेखर ने कहा—यह चर्चा छिड़ते ही वह उठ भागी।

गुरुचरण ने गम्भीर भाव धारण करके कहा—भागेगी तो ज़रूर ही; हज़ार हो, अब समझने-बूझने की उमर है।

यह कहकर सहसा एक हलकी-सी साँस छोड़ने के बाद फिर बोले—मेरी बेटी तो साक्षात् लक्ष्मी और सरस्वती का सा अवतार है ! ऐसी लड़की बड़े भाग्य से मिलती है भैया शेखरनाथ।

यह बात कहने के साथ ही गुरुचरण के शीर्ण कृश मुख के ऊपर गहरे स्नेह की ऐसी एक स्निग्ध और मधुर झलक देख पड़ी कि गिरीन्द्र और शेखर, दोनों ही आन्तरिक श्रद्धा के साथ मन ही मन उन्हें प्रणाम किये बिना न रह सके।

७

चाय की बैठक से चुपचाप भाग आने के बाद ललिता शेखर के कमरे में जाकर गैस की साफ़ रोशनी के नीचे एक बक्स खींच लाकर शेखर के गरम कपड़े तह करके रखने लगी। इतने ही में शेखर भी आ गया। उसे आते देखकर ललिता ने सिर उठाकर उसके चेहरे पर नज़र डाली, तो एकदम भय और विस्मय से सन्नाटे में आ गई—उसके मुँह से कोई शब्द न निकल सका।

किसी मुक़द्दमे में अपना सर्वस्व हारने पर आदमी जिस तरह का मुँह लिये अदालत के बाहर निकलता है—ऐसी दशा में जैसे सबेरे देखनेवाले लोग शाम को उसे एकाएक पहचान नहीं पाते, इतना परिवर्तन हो जाता है—वैसे ही इस एक घण्टे के अर्से में शेखर के चेहरे में इतनी तब्दीली हो गई थी कि ललिता को वह और ही मनुष्य जान पड़ने लगा। उसके

चेहरे पर सर्वस्व गँवाने के सारे चिह्न जैसे किसी ने जलते हुए लोहे से दागकर अंकित कर दिये हैं। शेखर ने सूखे गले से पूछा—क्या हो रहा है ललिता ?

ललिता इस प्रश्न का उत्तर न देकर, निकट आकर, अपने हाथों में उसका एक हाथ लेकर रुआसी सी होकर बोली—क्या हुआ शेखर दादा ?

"कहाँ, कुछ तो नहीं हुआ" कहकर शेखर ज़बरदस्ती हँसने की चेष्टा करके ज़रा हँस दिया। ललिता के हाथ का स्पर्श पाकर उसके मुख में कुछ-कुछ जीवन की रौनक़ फिर आई। वह पास ही एक कुर्सी पर बैठ गया। उसने फिर वही प्रश्न किया—क्या हो रहा है ललिता ?

ललिता ने कहा—यह मोटा ओवरकोट रखना भूल गई थी; वही साथ के सन्दूक़ में रख देने को आई हूँ।

शेखर सुनने लगा। ललिता भी अब पहले की अपेक्षा सुस्थ होकर कहने लगी—"पारसाल रेलगाड़ी में तुम्हें जाड़े में बड़ा कष्ट हुआ था कि नहीं! बड़े ऊनीकोट तो साथ में कई थे, मगर ख़ूब मोटा कोट एक भी न था। इसी से मैंने लौटकर आते ही दर्ज़ी की दूकान में तुम्हारी माप भेजकर यह भारी ऊनी ओवरकोट बनवा रक्खा था।" उसने एक भारी ओवरकोट उठा लाकर शेखर के आगे रख दिया।

शेखर ने उसे हाथ में लेकर देखा-भाला, और कहा—इसके बारे में मुझसे तो तुमने कुछ नहीं कहा था ?

ललिता ने हँसकर कहा—तुम बाबू साहब ठहरे। तुमसे पहले कहती तो तुम क्या इतना मोटा ओवरकोट बनवाने देते? इसी लिए मैंने तुमसे नहीं पूछा, बनवाकर रख दिया।

अब उस कोट को यथास्थान रखकर ललिता बोली—सब कपड़ों के ऊपर ही रख दिया है, सन्दूक़ खोलते ही पा जाओगे। देखो, जाड़ा लगते ही इसको पहन लेना, भूलना नहीं!

"अच्छा" कहकर शेखर थोड़ी देर तक एकटक ललिता की ओर ताकता रहा। इसके बाद एकाएक वह कह उठा—ना, यह हो ही नहीं सकता—किसी तरह नहीं!

ललिता ने कहा—क्या नहीं हो सकता दादा? पहनोगे नहीं?

शेखर चटपट कह उठा—ना, ना, यह बात नहीं है, वह और ही बात है।—अच्छा ललिता, जानती हो, मा का सब सामान बँध गया क्या?

"हाँ, दोपहर को आज मैंने ही तो सब तैयारी कर दी है।" यह कहकर ललिता और एक दफ़े सब सामान की जाँच करके सन्दूक़ में ताला बन्द करने लगी।

दम भर चुप रहने के बाद शेखर ने ललिता की ओर देखकर धीरे से पूछा—अच्छा ललिता, अगले साल मेरा क्या उपाय होगा—बता सकती हो?

ललिता ने आँख उठाकर कहा—क्यों?

" 'क्यों' का अनुभव मैं ही कर रहा हूँ ललिता !" शेखर ने यह कह तो डाला, मगर इस कथन को दबा देने के लिए उसी दम, सूखे मुख में प्रफुल्लता का भाव ज़बरदस्ती लाकर, बात का रुख़ पलटते हुए यों कहना शुरू किया—किन्तु पराये घर जाने के पहले कौन चीज़ किस जगह रक्खी है, क्या है क्या नहीं है, सब मुझे दिखला जाना; नहीं तो ज़रूरत के वक़्त कुछ भी ढूँढ़ने पर न मिलेगा।

ललिता ने चिढ़कर कहा—जाओ—

इतनी देर बाद शेखर को हँसी आई। उसने कहा—जाओ का अर्थ तो जानता हूँ; लेकिन हँसी नहीं, सचमुच भविष्य में मेरा क्या उपाय होगा? मुझे शौक़ तो सोलह आने है, लेकिन शौक़ पूरा करने की शक्ति पाई भर भी नहीं है। मुश्किल तो यह है कि ऐसे कामों को नौकरों से भी कराया नहीं जा सकता—वे बेगार टालेंगे। अब तो तुम्हारे मामा की तरह केवल एक धोती और एक कुर्ते में गुज़र करना पड़ेगा, यही लक्षण दिखाई देता है। ख़ैर, जो होना होगा वही होगा।

ललिता झट मेज़ पर चाभियों का गुच्छा फेंककर भाग गई।

शेखर ने चिल्लाकर कहा—कल सबेरे ज़रा एक दफ़े आना।

ललिता ने सुनकर भी नहीं सुना; वह तेज़ी से सीढ़ियाँ तय करती हुई दूसरी मंज़िल में उतर गई। वहाँ से अपने

घर में जाकर देखा, छत पर एक कोने में चाँदनी के उजेले में बैठी अन्नाकाली गेंदे के फूलों का ढेर लगाये माला गूँथ रही है। ललिता उसके पास जाकर बैठ गई और बोली—यहाँ ओस में बैठी क्या करती है काली ?

काली वैसे ही सिर झुकाये रहकर बोली—माला बना रही हूँ; आज रात को मेरी बिटिया का व्याह है कि नहीं।

"मुझसे तो तूने कहा भी नहीं था !"

काली—कुछ ठीक थोड़े था छोटी दिदिया। अभी थोड़ी देर हुई, बाबूजी ने पत्रा [illegible] कि इस महीने में आज के सिवा और लगन ही नहीं है। [illegible] हो गई है, व्याह में देर करने से हँसी होगी। जिस [illegible] इसी आज की लगन में भाँवरें पड़ जायँगी। हाँ दिदिया, दो रुपये लाओ, बरातियों के लिए मिठाई मँगवानी है।

ललिता ने हँसकर कहा—बस, रुपये लेने के वक्त छोटी दिदिया है। जा, मेरे बिस्तर पर तकिये के नीचे से ले ले।—अच्छा काली, गेंदे के फूलों से कहीं व्याह होता है ?

काली ने, सयानी औरतों का सा मुँह बनाकर कहा—"होता है। और फूल न मिलने पर इन्हीं से काम चलाया जा सकता है। मैं कई लड़कियों के व्याह-काज कर चुकी हूँ दिदिया ! मैं सब जानती हूँ।"—वह मिठाई मँगवाने के लिए झपटती हुई नीचे उतर गई।

ललिता उसी जगह बैठकर इन्हीं फूलों की माला बनाने लगी।

थोड़ी देर में काली ने लौटकर कहा—और सबको तो बुलावा दे आई हूँ, सिर्फ़ शेखर दादा बाक़ी हैं। जाऊँ, उनसे भी कह आऊँ, नहीं तो बुरा मानेंगे।—अब काली शेखर के घर चली गई।

काली पक्की पुरखिन है। वह सारा काम-काज क़ायदे के साथ किया करती है। शेखर को ख़बर देकर, ऊपर से नीचे आकर, उसने ललिता से कहा—उन्होंने एक माला माँगी है। जाओ न छुटकी दिदिया, फ़ुर्ती से दे आओ; तब तक मैं इधर का बन्दोबस्त करती हूँ। लगन का वक़्त आ ही गया समझो, अब देर नहीं है।

ललिता ने सिर हिलाकर कहा—यह मुझसे न होगा काली, तू ही दे आ।

"अच्छा, जाती हूँ। लाओ, वही बड़ी माला उठा दो" कहकर उसने हाथ बढ़ाया।

काली के हाथ में माला देते-देते ललिता न-जाने क्या सोचकर रुक गई। बोली—अच्छा, मैं ही दिये आती हूँ।

काली ने पुरखिन दाई की तरह मटककर कहा—यही करो, मुझे तो इतने काम करने को पड़े हैं कि मरने की भी फ़ुरसत नहीं।

काली के चेहरे का भाव और कहने का ढँग देखकर ललिता को हँसी आ गई। "एकदम पक्की पुरखिन हो गई!" कहकर हँसती हुई ललिता माला लिये हुए वहाँ से चली।

शेखर के घर जाकर, किवाड़ों की झिरी से झाँककर, कमरे के भीतर देखा, शेखर एकाग्र मन से बैठा चिट्ठी लिख रहा है। उसने धीरे से दरवाज़ा खोला, भीतर गई, धीरे-धीरे शेखर के पीछे जाकर खड़ी हो गई। इतने पर भी उसे ललिता के आने की ख़बर नहीं हुई। तब ललिता ने दम भर चुप रहकर, एकाएक चकित कर देने के विचार से, अपने हाथ की उस माला को सावधानी के साथ शेखर के गले में डाल दिया, और फ़ुर्ती के साथ कुर्सी के पीछे बैठ गई।

शेखर पहले तो चौंककर कह उठा—"काली है!", लेकिन मुँह फेरकर देखते ही अत्यन्त गम्भीर बनकर रूखे रुख से बोला—यह तुमने क्या किया ललिता!

ललिता उठकर खड़ी हो गई। शेखर के चेहरे का भाव देख वह तनिक शङ्कित होकर बोली—क्यों, क्या हुआ?

शेखर ने वैसी ही गम्भीर मुद्रा के साथ वैसा ही मुँह बनाये रहकर कहा—तुम क्या नहीं जानतीं? तो जाओ काली से पूछ आओ, आज की रात को गले में माला पहना देने से क्या होता है!

अब ललिता समझी। बिजली जिस तरह तेज़ी के साथ चमक जाती है उसी तरह शेखर के कथन का तात्पर्य हृदयङ्गम होते ही ललिता का मुखमण्डल भारी लज्जा के मारे लाल हो उठा। वह "नहीं, नहीं, कभी नहीं—कभी नहीं" कहती हुई तेज़ी के साथ वहाँ से चली गई।

शेखर ने पीछे से पुकारकर कहा—जाना नहीं ललिता—सुनती जाओ—बड़ा ज़रूरी काम है—

शेखर की पुकार उसके कानों तक पहुँची ज़रूर, लेकिन सुने कौन ? वह बीच में और कहीं नहीं ठहरी—दौड़ती हुई आकर अपनी कोठरी में घुस गई, और बिछौने पर आँखें मूँद कर लेट रही।

इधर पाँच-छः साल से ललिता शेखर के घनिष्ठ संसर्ग में रहकर इतनी बड़ी हुई है; लेकिन कभी किसी दिन शेखर के मुँह से उसने ऐसी बात नहीं सुनी। एक तो गम्भीर स्वभाववाला शेखर कभी उससे हँसी-मज़ाक करता ही न था, और अगर करता भी तो ललिता इसकी कभी कल्पना तक नहीं कर सकती थी कि वह इतनी बड़ी लज्जा की बात हँसी में अपने मुँह से कह सकता है। लज्जा से सिकुड़कर २० मिनट के लगभग पड़े रहकर वह उठ बैठी। उधर शेखर को वह मन ही मन डरती भी थी; उन्होंने कोई बहुत ज़रूरी काम है, यह कहकर बुलाया था, इसी बारे में ललिता सोच रही थी कि वहाँ जाऊँ या नहीं। उठकर बैठी सोच ही रही थी कि शेखर के घर की महरी का बोल सुन पड़ा—कहाँ हो जी ललिता बीबी, छोटे भैया तुम्हें बुला रहे हैं,—चलो।

ललिता ने कोठरी से निकलकर धीरे से कहा—"आती हूँ, तुम जाओ।" उसने ऊपर जाकर किवाड़े कुछ खोले; देखा, अभी तक शेखर की चिट्ठी समाप्त नहीं हुई—वह उसी को

लिख रहा है। कुछ देर तक चुपके खड़े रहने के बाद अन्त को धीरे से कहा—किसलिए बुलाया है ?

शेखर ने लिखते ही लिखते कहा—पास आओ, कहता हूँ।

ललिता—नहीं, यहीं से सुनूँगी, कह दो।

मन में हँसते हुए शेखर ने कहा—तुमने अचानक यह क्या कर डाला, बताओ तो भला ?

ललिता ने रूठकर कहा—जाओ—फिर वही बात!

शेखर ने मुँह फिराकर कहा—मेरा क्या दोष ? तुम्हीं तो कर गईं—

ललिता—कुछ नहीं किया मैंने—तुम वह माला फेर दो मुझे।

शेखर—इसी के लिए तुम्हें बुला भेजा है ललिता। पास आओ, फेरे देता हूँ। तुम आधा कर गई हो, खिसक आओ, मैं उसे सम्पूर्ण कर दूँ।

ललिता दरवाज़े की आड़ में क्षण भर चुपकी खड़ी रही। फिर बोली—सच कहती हूँ तुमसे मैं, इस तरह का ठट्ठा करोगे तो आइन्दा फिर कभी तुम्हारे सामने न आऊँगी।—लाओ, फेर दो।

शेखर ने टेबिल की ओर मुँह फेरकर क़लम उठा ली, और कहा—ले जाओ कहता तो हूँ।

ललिता—तुम वहीं से फेक दो।

शेखर ने गरदन हिलाकर कहा—पास आये बिना नहीं पाओगी।

"तो मुझे ज़रूरत नहीं है" कहकर ख़फ़ा होकर ललिता चली गई।

शेखर ने चिल्लाकर कहा—लेकिन आधा हो गया—

"हो जाने दो, हो जाने दो" कहती हुई ललिता सचमुच क्रोध करके चली गई।

वह चली तो ज़रूर गई, लेकिन नीचे नहीं गई। पूर्व की ओर जो खुली हुई छत थी, उस पर एकान्त में जाकर रेलिंग पकड़कर चुपचाप खड़ी हो गई। उस समय सामने आकाश में चन्द्रमा निकल आया था, और जाड़े की मलिन चाँदनी चारों ओर छाई हुई थी। ऊपर स्वच्छ नीला आकाश था। ललिता एक बार शेखर के कमरे की ओर नज़र डालकर ऊपर मुँह करके देखने लगी। इस समय उसकी आँखों में जलन होने लगी; लज्जा तथा रोष के वेग से आँखों में आँसू भर आये। वह इतनी नन्हीं नहीं है कि इन सब बातों का मतलब पूरी तरह समझ न सके। फिर उसके साथ यह मर्मस्थल में चोट पहुँचानेवाला उपहास करने की क्या ज़रूरत! वह कितनी तुच्छ है, कितनी नीची दशा में है, यह समझने लायक़ उसकी अवस्था हो चुकी है। वह निश्चित रूप से जानती है कि अनाथ और निरुपाय समझकर उसको सभी आदर-यत्न और प्यार करते हैं। शेखर भी इसी दृष्टि से उसके साथ

रोना-धोना मचा रहता है। कहीं चैन नहीं है, शान्ति नहीं नज़र आती।

नवीन फिर गरजकर बोले—बतलाओ जी, यह समाचार सच है या नहीं?

गुरु बाबू ने अश्रुपूर्ण नेत्र ऊपर उठाकर धीरे से कहा—जी हाँ, सच है।

"तुमने क्यों ऐसा काम किया? तनख़्वाह तो सिर्फ़ ६०) रु० है तुम्हारी—और तुमने—" क्रोध के मारे नवीन बाबू के मुँह से आगे शब्द ही न निकले।

आँसू पोंछकर रुँधे हुए गले को साफ़ करके गुरु बाबू बोले—क्या कहूँ दादा, बुद्धि भ्रष्ट हो रही थी। दुख की जलन में कुछ न सूझ पड़ता था कि ब्रह्मसमाज में शामिल हो जाऊँ या गले में फन्दा डालकर फाँसी लगा लूँ। अन्त को सोचा, आत्महत्या न करके ब्रह्म के उपासकों में मिल जाना ही ठीक होगा।

नवीन ने पूरी ताक़त से चिल्लाकर कहा—ख़ूब किया! अपने गले में फाँसी नहीं लगाई, जाति और धर्म का गला घोट डाला; शाबाश! अच्छा जाओ, अब हम लोगों को अपना यह काला मुँह मत दिखाना। इस समय जो सलाह-कार साथी-संगी हुए हैं उन्हीं की सोहबत में रहो-सहो—लड़कियों का ब्याह मोचियों-चमारों के साथ करो।—इस

तरह कहकर गुरुचरण को विदा करके नवीन बाबू दूसरी ओर मुँह फेरकर बैठ गये।

बेचारे गुरु बाबू आँसू पोंछते हुए उठ गये।

पहले तो नवीन बाबू को कुछ न सूझा कि वह इस निरीह मनुष्य के ऊपर क्रोध करके उसको क्या दण्ड दें। गुरुचरण इस समय उनके हाथ के भीतर से बिलकुल बाहर हो गये थे, और उनके जल्दी हाथ आने की सम्भावना भी नहीं है। इसी से कुछ देर तक व्यर्थ आक्रोश से कुढ़ने और तड़पने के बाद—उन्हें नीचा दिखाने का कोई उपाय न सूझ पड़ने पर—नवीन राय ने उसी दिन कारीगर बुलाकर छत से दोनों घरों में आने-जाने की राह बन्द करा दी। इस तरह उन्होंने अपने जी की जलन बुझाई।

यह ख़बर बहुत दूर पर परदेश में बैठी भुवनेश्वरी ने शेखर के मुँह से जब सुनी तब रो पड़ीं। बोलीं—क्यों शेखर, यह सलाह भला उन्हें किसने दी?

शेखर ने अपने अनुमान से ठीक-ठीक ताड़ लिया था कि सलाह किसने दी है, लेकिन उसका ज़िक्र न करके उसने कहा—मगर अम्मा, कुछ दिनों में तुम्हीं सब लोग तो उन्हें जाति और समाज के बाहर कर देते। इतनी लड़कियों के ब्याह वे किस तरह, समय पर, कर पाते? मुझे तो इसका कोई उपाय नहीं नज़र आता।

नवीन राय के फन्दे में फँस जाने पर फिर छुटकारा पाने की आशा कोई नहीं करता।

गिरीन्द्र ने पूछा—हाँ, तो तुम जाकर उनसे यह बात कहोगी न?

मनोरमा बोली—अच्छा पूछूँगी। रुपये देकर अगर तू एक ग़रीब परिवार का कुछ उपकार कर सके तो अच्छी बात है।

ज़रा रुक कर मनोरमा ने हँसकर फिर पूछा—अच्छा, बता तो सही, तुझे ही क्यों इस तरह आपसे उपकार करने की चटापटी हो रही है गिरीन्द्र?

"चटापटी कुछ भी नहीं है दीदी, दुःख-कष्ट पड़ने पर एक आदमी को दूसरे आदमी की सहायता करनी ही चाहिए—यही मनुष्य का धर्म है"—कहकर ही लज्जित मुख नीचा किये गिरीन्द्र वहाँ से चल दिया। मगर दरवाज़े तक जाकर फिर लौट पड़ा, और आकर बैठ गया।

बहन ने पूछा—तू तो लौटकर फिर बैठ गया!

गिरीन्द्र ने हँसकर कहा—इतनी करुण-कथा जो तुम मुझे सुनाती रही हो सो, मुझे तो जान पड़ता है, शायद इसमें सत्य की मात्रा बहुत थोड़ी है।

मनोरमा ने विस्मय के साथ कहा—क्यों?

गिरीन्द्र ने कहा—उस घर की ललिता को तो मैंने जिस तरह लापर्वाही के साथ रुपये-पैसे ख़रचते देखा है, वह किसी

दुखी-दरिद्र का काम नहीं। दीदी, अभी उस दिन की बात है। हम सब लोग थिएटर देखने गये थे। ललिता नहीं गई थी, फिर भी अपनी बहन के हाथ दस रुपये ख़र्च के लिए उसने भेजे थे। चारु से पूछ लो, ललिता जिस तरह ख़र्च करती रहती है, उससे जान पड़ता है कि महीने में २०-२५ रुपये से कम में उसका काम न चलता होगा।

मनोरमा को इस पर विश्वास न हुआ।

चारु ने कहा—सच तो है मा। शेखर बाबू रुपये देते हैं। आज ही कल नहीं, लड़कपन से ही मेरी गुइयाँ शेखर दादा की आलमारी खोलकर रुपये ले आया करती है—कोई कुछ नहीं कहता।

मनोरमा ने बेटी की ओर देखकर सन्देह के साथ पूछा—रुपये ले आती है, शेखर बाबू जानते हैं?

चारु ने सिर हिलाकर कहा—जानते तो हई हैं। उनके आगे ही तो ताला खोलकर निकाल लाती है। पिछले महीने में अन्नाकाली के गुड्डे के ब्याह में जो इतना ख़र्च हुआ था, वह और किसने दिया? सब रुपये सखी ने ही तो दिये थे।

मनोरमा ने सोचकर कहा—क्या जानें। मगर हाँ, यह बात भी ठीक है। उस बुड्ढे की तरह उसके लड़के चमार नहीं। लड़के सब मा को पड़े हैं—सबने मा का स्वभाव पाया है। इसी से उनमें दया-धर्म देख पड़ता है। इसके सिवा ललिता लड़की बहुत अच्छी और सबके दिल में

घर कर लेनेवाली है। वह छुटपन से ही शेखर के पास रही है। उसको दादा कहती है। इसी से सब आदमी उसे प्यार करते हैं—हाँ चारु, तू तो आया-जाया करती है। शेखर बाबू का क्या इसी माघ महीने में ब्याह होनेवाला है? सुनती हूँ, गहरी रक़म बुड्ढे के हाथ लगेगी।

चारु ने कहा—हाँ अम्मा, इसी महीने में होगा—सब ठीक होगया है।

५

गुरुचरण उस प्रकृति के आदमी थे, जो हर उमर के—क्या छोटे क्या बड़े सभी—लोगों से मेल खा जाया करती है; जिस प्रकृति के आदमी से चाहे जो बिना किसी संकोच के बातचीत कर सकता है। यही कारण था, कि दो ही चार दिन साहब-सलामत होने से गिरीन्द्र और गुरुचरण में गहरी मित्रता हो गई थी। गुरुचरण के चित्त या मन में दृढ़ता तो नाम लेने को भी न थी। इसी लिए वे जैसे बहस करना पसन्द करते थे, वैसे बहस में हार जाने पर रत्ती भर असन्तोष या रोष प्रकट नहीं करते थे।

गिरीन्द्र को गुरुचरण शाम के बाद चाय का न्योता अकसर दे रखते थे। उनके दफ़्तर से लौटने में ही दिन ख़तम हो जाया करता था। आकर हाथ-मुँह धोने के बाद ही वे कहते थे—ललिता बेटी, चाय तैयार है क्या?—"काली, जा तो ज़रा, अपने गिरीन्द्र मामा को बुला ला।"

मेहमान के आते ही चाय पीने के साथ-साथ बहस का सिलसिला छिड़ता जाता था।

किसी-किसी दिन ललिता, मामा की आड़ में बैठकर, चुपचाप सुना करती थी। उस दिन फिर गिरीन्द्र की बहस में हज़ारों युक्तियों और तर्कों का ख़ज़ाना-सा खुल जाता था। बहस का विषय प्राय: आधुनिक समाज ही होता था, और उसके विरुद्ध ही युद्ध की घोषणा की जाती थी। आजकल के संकीर्ण एवं जीर्ण-शीर्ण समाज की हृदयहीनता, असङ्गत उपद्रव और अत्याचार सभी समझदारों की आँखों में काँटे-से खटक रहे हैं। ये सभी आरोप सच्चे हैं।

एक तो समर्थन करने का कुछ वास्तव में था नहीं, उस पर गुरुचरण के उत्पीड़ित और अशान्त हृदय के साथ गिरीन्द्र की बातें पूर्णरूप से अक्षरशः मेल खा जाती थीं। अन्त को वे सिर हिलाकर कहते थे—ठीक कहते हो गिरीन्द्र बाबू। यथासमय अच्छे घर में योग्य वर के साथ अपनी कन्या का ब्याह कर देने की इच्छा किसे नहीं होती? मगर वह इच्छा पूरी किस तरह हो? मुझी को देखिए, मैं ऐसे उत्तम घर-वर को कन्या-दान किस तरह करूँ? समाज के सिरधरा कहते हैं कि लड़की सयानी हो चुकी है, उसे ब्याहो। मगर कोई माई का लाल ऐसा नहीं नज़र आता जो इस काम में कुछ मेरी मदद करे। तुमने बहुत ही ठीक कहा गिरीन्द्र! मुझी को देख लो—रहने का घर तक गिरों हो गया है। दो दिन

भुवनेश्वरी ने गरदन हिलाकर कहा—कुछ भी होने को नहीं रह जाता बेटा! फिर, उसके लिए पहले ही से जाति छोड़ बैठना या धर्म को धता बताना बुद्धिमानी मानी जायगी या नादानी? अगर ऊबकर लोग इसी तरह करने लगें तो शायद हज़ारों लोगों को जाति-धर्म का त्याग करना पड़ेगा। भगवान् ने जिन लोगों को संसार में पैदा किया है उनकी ख़बर भी वही लेते हैं। गुरुचरण बाबू को भी वही उबारते।

शेखर चुप हो रहा। भुवनेश्वरी ने आँसू पोंछकर कहा—मैं जो अपनी ललिता बेटी को अपने साथ लेती आती तो उसका उपाय, चाहे जिस तरह होता, मैं ही कर देती। मैं तो जानती नहीं, गुरुचरण ने यही सब इरादा करके शायद उसे मेरे साथ न भेजा होगा। मैंने समझा, शायद सचमुच उसके ब्याह की तैयारी हो रही है।

शेखर ने माता के मुँह की ओर देखकर कुछ लज्जा के साथ कहा—अच्छा तो है मा, अब घर चलकर ऐसा ही क्यों न करो। वह तो कुछ ब्रह्मसमाजी हुई नहीं है, उसका मामा ही हुआ है। और, वे भी वास्तव में कुछ उसके अपने सगे कोई नहीं होते। ललिता के और कोई अपना न होने के कारण ही वह उनके घर में पल रही है।

भुवनेश्वरी ने सोचकर कहा—यह तो ठीक है, लेकिन तुम्हारे पिता और ढँग के आदमी हैं। उनकी ज़िद पत्थर की

लकीर होती है। वे किसी तरह इसके लिए राज़ी न होंगे। शायद उन लोगों से मिलने तक न दें।

शेखर अपने मन में भी यही आशङ्का कर रहा था। वह और कुछ न कहकर चल दिया।

अब शेखर को एक मिनट भी विदेश में रहने की इच्छा नहीं रही। दो-तीन दिन चिन्तित, अप्रसन्न भाव से इधर-उधर घूमता-फिरता रहा। एक दिन शाम को आकर उसने कहा—अब तो यहाँ अच्छा नहीं लगता मा,—चलो, घर चलें।

भुवनेश्वरी फ़ौरन् राज़ी हो गईं। बोलीं—ठीक है बेटा, मुझे भी कुछ नहीं भाता। चल।

घर में लौट आने के बाद माता और पुत्र, दोनों ने देखा कि छत से जो आने-जाने की राह थी वह बन्द कर दी गई है। उसके आगे एक दीवार खड़ी है। गुरुचरण के साथ अब किसी तरह का लगाव रखना—यहाँ तक कि मुँह से बोलना तक—नवीन बाबू को मंजूर नहीं यह बात, किसी से बिना पूछे ही, दोनों जने जान गये।

रात को शेखर के खाने के वक़्त वहाँ माँ बैठी थीं। दो-एक बातों के बाद वे बोलीं—उस घर के गिरीन्द्र ही के साथ ललिता के ब्याह की बातचीत हो रही है। मैं तो पहले ही समझ गई थी।

शेखर ने सिर उठाये बिना ही पूछा—कौन कहता था?

मा—उसी की मामी कहती थी। दोपहर को वे जब सो गये थे तब, उसी मौक़े पर, मैं ख़ुद जाकर भेंट कर आई। उसी घड़ी से रो-रोकर उसने अपनी आँखें सुजा ली हैं।—दम भर चुप रहकर आँचल से अपनी आँखें पोंछती हुई फिर कहने लगीं—सब भाग्य की बात है शेखर, भाग्य की! भाग्य का लिखा कोई बदल नहीं सकता। और किसे दोष दूँ, तू ही कह! कुछ भी हो, गिरीन्द्र लड़का अच्छा है; रुपये-वाला भी है; ललिता को किसी तरह का कष्ट न होगा।

प्रत्युत्तर में शेखर ने कुछ भी न कहा। वह सिर झुकाकर भोजन की सामग्री को हाथ से उठाने-रखने लगा। दम भर बाद मा उठ गईं। वह भी उठकर हाथ-मुँह धोकर बिछौने पर आकर लेट रहा।

दूसरे दिन शाम के बाद कुछ दूर घूम आने के लिए शेखर घर से निकला। उस समय गुरुचरण के घर में, बाहर की बैठक के अन्दर, नित्य की चाय पीने की सभा जमी हुई थी। उसमें यथेष्ट उत्साह के साथ हँसने और बातचीत करने का सिलसिला जारी था। वहाँ का शोर-गुल शेखर ने सुना तो उसने ठिठककर कुछ सोचा; और फिर धीरे-धीरे भीतर घुसकर उसी आवाज़ को लक्ष्य करके गुरुचरण के बैठकख़ाने में आकर खड़ा हो गया। उसी दम सारा शोर-गुल थम गया। शेखर के चेहरे की ओर देखकर सभी के मुँह का भाव बदल गया।

शेखर के बाहर से लौट आने की ख़बर सिवा ललिता के और कोई न जानता था। आज वहाँ गिरीन्द्र और एक और भी भले आदमी उपस्थित थे। वे तो विस्मित होकर शेखर की ओर ताकने लगे, और गिरीन्द्र मुख पर अत्यन्त गम्भीरता का भाव लाकर दीवार की ओर देखने लगा। उस समय सबसे अधिक चिल्लाकर बातें कर रहे थे ख़ुद गुरुचरण ही; उनका चेहरा शेखर को देखकर बिलकुल पीला पड़ गया। उनके पास बैठी ललिता चाय तैयार कर रही थी; उसने एक बार सिर उठाकर देखा, और फिर झुका लिया।

शेखर ने आगे बढ़कर तख़्त के ऊपर सिर रखकर प्रणाम किया और फिर उसी के ऊपर एक किनारे बैठकर हँसते-हँसते कहा—यह क्या, एकदम सन्नाटा क्यों पड़ गया !

गुरुचरण ने बहुत धीमे स्वर में शायद आशीर्वाद दिया; किन्तु क्या आशीर्वाद दिया, यह कुछ समझ न पड़ा।

गुरुचरण के मन के भाव को शेखर समझ गया। इसी से उन्हें सँभलने को समय देने के लिए उसने अपना ज़िक्र छेड़ दिया। कल सबेरे की गाड़ी से लौट आने की, माता के आराम हो जाने की, विदेश की तथा और भी कितनी ही बातें लगातार कहता ही गया। अन्त में उसने उस अपरिचित युवक की ओर नज़र फेरी।

इस बीच में गुरुचरण ने अपने को बहुत कुछ सँभाल लिया था। उन्होंने उस लड़के का परिचय देते हुए कहा—

ये हमारे गिरीन्द्र बाबू के मित्र हैं। एक ही जगह इन लोगों का घर है; एक ही साथ लिखा-पढ़ा है। ये बहुत अच्छे लड़के हैं; श्याम बाज़ार में रहते हैं, फिर भी जब से मेरे साथ जान-पहचान हुई है तब से अक्सर आकर भेंट कर जाते हैं।

शेखर ने सिर हिलाकर मन में कहा, हाँ, बहुत अच्छे लड़के हैं! थोड़ी देर चुप रहने के बाद प्रकट में कहा—काकाजी, और सब कुशल है न?

इसका गुरुचरण ने कुछ उत्तर न दिया, सिर झुका लिया। शेखर को उठने के लिए तैयार देख एकाएक रुआसे से होकर वे कह उठे—कभी-कभी आ जाया करना भैया, बिलकुल ही छोड़ न देना। सब हाल सुन चुके हो न?

"हाँ, सुन चुका हूँ" कहकर शेखर भीतर ज़नाने की तरफ़ चला गया।

इसके बाद ही भीतर से गुरु बाबू की घरवाली के ज़ोर से रोने की आवाज़ सुन पड़ी। बाहर बैठे गुरुचरण, सिर झुकाये, धोती के खूँट से आँखों के आँसू पोंछने लगे, और गिरीन्द्र अपराधी का सा मुँह बनाकर खिड़की के बाहर चुपचाप ताकने लगा। ललिता पहले ही वहाँ से उठकर चली गई थी।

कुछ देर में रसोई-घर की दालान से उठकर बरामदा नाँघकर आँगन में जानेपर शेखर ने देखा, अँधेरे में दहलीज के

भीतर किवाड़े की आड़ में ललिता खड़ी है। धरती में सिर रखकर प्रणाम करने के बाद खड़ी होकर वह बिलकुल ही शेखर के वक्ष:स्थल के निकट खिसक आई, और मुँह उठाकर चुपचाप जैसे किसी आशा से खड़ी रही। इसके उपरान्त पीछे हटकर उसने अत्यन्त धीमे स्वर में पूछा—मेरी चिट्ठी का जवाब क्यों नहीं दिया ?

शेखर ने कहा—कहाँ, मुझे तो कोई चिट्ठी नहीं मिली,—क्या लिखा था ?

ललिता—बहुत सी बातें थीं। ख़ैर, जाने दो। सब हाल तो तुम सुन ही चुके हो। अब बताओ, मुझे क्या आज्ञा देते हो ?

शेखर ने अचरज प्रकट करते हुए कहा—मेरी आज्ञा! मेरी आज्ञा किसलिए ? मेरी आज्ञा से क्या होगा ?

ललिता शङ्कित हो उठी, शेखर की ओर दृष्टि करके पूछा—'किसलिए ?'

शेखर—और नहीं तो क्या! मैं किसे आज्ञा दूँगा ?

"मुझे दो, और किसे दोगे—और किसे दे सकते हो ?"

"तुम्हें ही क्यों आज्ञा दूँगा ? और, देने पर भी तुम उसे सुनोगी ही क्यों भला ?" शेखर का स्वर गम्भीर, किन्तु कुछ करुण था।

अब तो ललिता मन में बहुत ही डरी। उसने एक बार फिर निकट खिसक आकर रुआसी आवाज़ में कहा—जाओ,

हटो, इस समय मुझे दिल्लगी अच्छी नहीं लगती। मैं तुम्हारे पैरों पड़ती हूँ, बताओ, क्या होगा ? मुझे तो रात को नींद ही नहीं पड़ती।

शेखर—डर काहे का है ?

ललिता—तुम भी खूब हो ! डरूँगी नहीं—तुम पास न थे, मा इतनी दूर बैठी थीं, इधर बीच में एकाएक मामा यह क्या कर बैठे हैं। अब जो मुझको घर में रखने के लिए मा राज़ी न हों तो ?

शेखर ने क्षण भर चुप रहकर कहा—सो तो सच है। मा ग्रहण न करना चाहेंगी। तुम्हारे मामा दूसरे आदमी से बहुत-से रुपये ले चुके हैं, यह समाचार वे सुन चुकी हैं। इसके सिवा दूसरी बाधा यह भी है कि अब तुम लोग ब्रह्म-समाजी हो, और हम लोग हैं हिन्दू।

इसी समय अन्नाकाली ने रसोईवाली दालान से आवाज़ दी—छुटकी दिदिया, अम्मा बुला रही हैं।

ज़ोर से "आती हूँ" कहकर ललिता ने फिर उसी धीमी आवाज़ में कहना शुरू किया—मामा चाहे जो हो गये हों, मैं तो वही हूँ जो तुम हो। मा अगर तुमको नहीं अलग कर सकतीं तो मुझे भी नहीं छोड़ेंगी। और, गिरीन्द्र बाबू से रुपये उधार लेने की बात जो तुम कहते हो, सो मैं उन्हें उनके रुपये फेर दूँगी। फिर जब ऋण के रूप में रुपये लिये गये हैं तब, दो दिन पहले हो या दो दिन पीछे, देने ही पड़ेंगे।

शेखर ने पूछा—मगर इतने रुपये पाओगी कहाँ ?

ललिता ने शेखर के मुँह की ओर एक बार आँख उठाकर, दम भर चुप रहकर, कहा—तुम नहीं जानते, स्त्रियों को कहाँ से रुपये मिलते हैं ? मैं भी वहीं से पाऊँगी।

अभी तक संयत होकर बातचीत करते रहने पर भी शेखर भीतर ही भीतर जला जा रहा था। इस दफ़े उसने भी आवाज़ा कसते हुए कहा—लेकिन तुम्हारे मामा ने तुमको बेंच जो डाला है !

अँधेरा होने से ललिता ने शेखर के मुख का भाव नहीं देख पाया, मगर स्वर का बदलना उससे नहीं छिपा रहा। उसने दृढ़ स्वर में उत्तर दिया—सब झूठ है। मेरे मामा के समान देवता आदमी संसार में न होगा। उनका तुम उपहास न करो। उनके दुःख और कष्ट को तुम भले ही न जानो, लेकिन सारी दुनिया जानती है।

इतना कहकर दुबधा दूर करके, अन्त को फिर बोली—इसके सिवा उन्होंने रुपये लिये हैं मेरा ब्याह होने के पहले; उनको न तो मुझे बेचने का अधिकार है, और न उन्होंने मुझे बेचा ही है। इस बात का अधिकार अब, अगर किसी को है, तो केवल तुम्हीं को; और रुपये देने के डर से जो तुम मुझे बेच डालना चाहो तो अवश्य बेच सकते हो।

उत्तर की अपेक्षा किये बिना ही तेज़ी के साथ ललिता रसोईवाली दालान की ओर चली गई।

९

उस दिन, रात को, बहुत देर तक शेखर विह्वल-सा होकर पागल की तरह सड़कों और गलियों में घूम-फिरकर अभी लौटकर घर में बैठा सोच रहा था कि यह कल की ज़रासी छोकरी ललिता इतनी तेज़ किस तरह हो गई! इसने इतनी और ऐसी बातें सीख लीं! बेहया बातूनी औरत की तरह इस प्रकार मेरे मुँह पर ही उसने ये बातें कैसे कर पाई?

आज वह ललिता के व्यवहार से सचमुच बहुत विस्मित और कुपित हो गया था। मगर इस क्रोध का यथार्थ कारण क्या है, इस पर जो वह कुछ भी ग़ौर करता, अगर वह शान्त होकर सोचकर देखता, तो उसे देख पड़ता कि यह क्रोध ललिता के ऊपर नहीं, संपूर्णरूप से अपने ही ऊपर है।

ललिता को छोड़कर इधर कई महीने बाहर रहने के समय उसने अपने आप को अपनी ही कल्पना के भीतर बाँध रक्खा था;—केवल काल्पनिक सुख, दुःख, लाभ, हानि का हिसाब लगाकर देखते हुए वह इसी की आलोचना करता रहता था कि ललिता उसके जीवन के भविष्य भाग के साथ कैसे—न कटनेवाले—"बन्धन" से बँधी हुई है, अथवा उसके बिना अपना जीवित रहना कितना कठिन, कितना दुःखदायक हो सकता है। ललिता बाल्यावस्था से ही शेखर के परिवार में आकर शामिल हो गई थी, इस कारण उसने उसे विशेष रूप से उस परिवार के भीतर मा-बाप और भाई-बहन आदि के अन्तर्गत

करके कभी नहीं देखा; इस रूप में देखने का खयाल भी उसके मन में नहीं आया। शायद ललिता न मिल सकेगी, मा-बाप की सम्मति इस ब्याह में नहीं प्राप्त हो सकेगी, शायद वह और ही किसी की होगी—इसी तरह की राह में होकर उसकी दुश्चिन्ता का प्रवाह बराबर शुरू से ही बहता चला आ रहा था। इसी कारण विदेशयात्रा के पहले दिन, रात्रि के समय, ज़बरदस्ती उसके गले में माला डालकर शेखर इस ओर (और के साथ उसके ब्याह) की राह बन्द कर गया था।

प्रवास में रहकर गुरुचरण के धर्म-परिवर्तन की ख़बर जब उसने सुनी तब सुनते ही वह व्याकुल हो उठा। वहाँ दिन-रात हर घड़ी उसके सिर पर यही चिन्ता सवार रही कि कहीं ललिता हाथ से निकल न जाय। सुख मिले चाहे दुःख, आज तक चिन्ता का यही पहलू उसका परिचित था; किन्तु आज ललिता की स्पष्ट बातों ने इस द्वार को धड़ाम से बन्द करके चिन्ता की धारा को एकदम विपरीत दिशा में बहा दिया। तब ललिता मिलेगी या नहीं, यह चिन्ता थी, मगर अब ललिता को छोड़ना कहीं असम्भव न हो उठे, यह चिन्ता हो गई।

श्यामबाज़ार का ब्याह उचट गया था। अन्त को वे लोग भी उतने रुपये, जितने नवीन राय माँगते थे, देने की हिम्मत न कर सके। इधर शेखर की मा ने भी यह सम्बन्ध पसन्द नहीं किया। इस प्रकार इस सङ्कट से तो फ़िलहाल

कुछ दिन के लिए शेखर छुटकारा पा गया। मगर नवीन राय की नज़र में दस-बीस हज़ार रुपयों का शिकार चढ़ा हुआ था। इतने से कम में काम करने को वे तैयार न थे, और न ऐसे आँख के अन्धे गाँठ के पूरे लड़कीवाले को लाकर फँसाने के लिए दलाल दौड़ाना ही बन्द था।

इधर शेखर सोचता था, क्या किया जाय? उस रात का वह काम इतना भारी और अपरिहार्य हो उठेगा, ललिता उस पर इस तरह निस्संशय भाव से सम्पूर्ण विश्वास कर बैठेगी, कि उसका सचमुच विवाह हो गया है, धर्म के अनुसार किसी कारण से इसके विपरीत नहीं हो सकता—इतनी दूर तक शेखर ने विचार नहीं किया था। यद्यपि उसने अपने ही मुँह से यह बात उस समय कही थी कि "जो होना था, हो गया; अब उसे हम या तुम, कोई लौटा नहीं सकता" तथापि, उस समय आज की तरह सब पहलुओं पर अच्छी तरह ग़ौर के साथ विचार करने की शक्ति उसमें नहीं थी। और, शायद अवसर भी न था।

उस वक़्त सिर के ऊपर आकाश में चन्द्रमा चढ़ आया था, चारों ओर चमकीली चाँदनी फैली हुई थी, गले में माला पड़ी थी, प्रियतमा के धड़कते हुए हृदय को अपनी छाती से लगाकर पहले-पहल उस नये अनुभव से मिला हुआ मोह था, और प्रेमीजन जिसे अधर-सुधा कहते हैं उसके पीने का बहुत ही तेज़ नशा था। उस समय स्वार्थ

और सांसारिक अच्छाई-बुराई का खयाल नहीं हुआ; अर्थलोलुप पिता का रौद्र रूप आँखों के आगे आकर उपस्थित नहीं हुआ। सोचा था, मा तो ललिता को प्यार करती हैं, अतएव उन्हें राज़ी करना कुछ कठिन न होगा; और पिता को भी दादा (बड़े भाई) की सिफ़ारिश पहुँचाकर किसी न किसी तरह नरम कर लिया जा सकेगा, तो शायद अन्त तक काम सिद्ध हो जायगा। इसके अलावा उस समय गुरुचरण ने इस तरह अपने को अलग करके उन (दोनों) की आशा के द्वार को भारी पत्थर से कसकर बन्द नहीं कर दिया था। अब तो विधाता आप ही विमुख हो बैठे देख पड़ते हैं।

वास्तव में शेखर के चिन्ता करने की बात विशेष कुछ न थी। वह निश्चित रूप से जानता था कि अब पिता को राज़ी करना तो दूर रहा, माता को भी राज़ी करना सम्भव नहीं। अब तो इस बात का ज़िक्र ज़बान पर लाने की भी राह नहीं रही।

शेखर ने लम्बी साँस छोड़कर और एक बार अस्पष्ट स्वर में कहा—क्या किया जाय! वह ललिता को अच्छी तरह जानता था। उसको उसी ने अपने हाथ से लिखा-पढ़ाकर, शिक्षा देकर, इतना बड़ा किया है। उसने एक बार जिसे अपना धर्म जान लिया है उसे वह किसी तरह नहीं छोड़ने की। उसने समझ लिया है कि वह शेखर की धर्मपत्नी हो चुकी। इसी से आज शाम को अँधेरे में, बिना किसी संकोच के, शेखर

के वक्षःस्थल के निकट आकर मुँह के पास मुँह ले जाकर वह इस तरह खड़ी हुई थी।

गिरीन्द्र के साथ ललिता के ब्याह की बातचीत शुरू हुई थी; किन्तु कोई भी उसको इसके लिए राज़ी न कर पावेगा। मगर अब तो वह किसी तरह चुप होकर बैठी नहीं रहेगी—अभी सब बातें प्रकट कर देगी। शेखर की आँखों में जलन होने लगी, चेहरा लाल हो गया। सच तो है! वह तो सिर्फ़ माला बदल कर ही नहीं रह गया, उसको छाती से लगाकर उसका मुँह भी चूम लिया है! ललिता ने रोका नहीं—दोष न समझकर ही नहीं रोका—इसका उसे अधिकार है, यह जानकर ही नहीं रोका। अब वह अपने इस आचरण की क्या कैफ़ियत किसी को देगा?

यह निश्चय है कि माता और पिता की राय के बिना ललिता के साथ ब्याह नहीं हो सकता; किन्तु गिरीन्द्र के साथ ललिता का ब्याह न होने का कारण प्रकट होने के बाद घर में या बाहर वह मुँह कैसे दिखावेगा?

१०

असम्भव जानकर शेखर ने ललिता की आशा बिलकुल ही छोड़ दी थी। पहले कई दिन तक वह मन में बहुत ही डरता रहा कि कहीं वह अचानक आ न जाय, कहीं सब हाल ज़ाहिर न कर दे, कहीं इस मामले की जवाबदेही न उसे करनी पड़े! किन्तु किसी ने उससे कैफ़ियत नहीं तलब की। कोई बात

प्रकट हुई या नहीं, यह भी नहीं जाना गया, अथवा उस घर से इस घर कोई आया-गया तक नहीं। शेखर के कमरे के सामने जो खुली छत थी उसके ऊपर खड़े होने से ललिता के घर की सारी छत देख पड़ती थी। कहीं सामना न हो जाय, इस डर से शेखर इस छत पर खड़ा तक न होता था। लेकिन जब बिना विघ्न-बाधा के पूरा एक महीना बीत गया तब उसने सन्तोष की साँस लेकर मन में कहा—हज़ार हो, स्त्री-जाति के लज्जा-संकोच न होना असम्भव है, ऐसी बातों को वह प्रकट कर ही नहीं सकती। शेखर ने सुन रक्खा था कि स्त्रियों की छाती चाहे फट जाय, लेकिन मुँह नहीं खुलना चाहता। इस बात पर उसने विश्वास कर लिया, और स्त्रियों के भीतर इतनी दुर्बलता रखने के कारण मन में विधाता की बुद्धि की बड़ाई की। लेकिन फिर भी शान्ति क्यों नहीं प्राप्त होती? जब से उसने समझा कि अब कोई डर नहीं है तभी से एक अभूतपूर्व व्यथा उसके हृदय भर में रह-रहकर व्याप्त क्यों हो उठती है! रह-रहकर हृदय की गहरी से गहरी तह तक इस तरह निराशा, वेदना और आशङ्का से काँप क्यों उठता है? तब तो शायद ललिता कोई भी बात नहीं कहेगी? और एक आदमी के हाथ में सौंप दी जाने के समय तक चुपकी ही रहेगी। यह ख़याल मन में लाते भी, कि ललिता का ब्याह हो गया है, वह सुसराल चली गई है, शेखर के भीतर और बाहर इस तरह आग सी क्यों लग जाती है?

पहले शेखर नियम से शाम को बाहर हवा खाने के लिए न जाकर कमरे के सामने की उसी खुली छत पर टहलता था। आज फिर वही करने लगा; किन्तु एक दिन भी उसे उस घर का कोई आदमी उस छत के ऊपर नहीं देख पड़ा। केवल एक दिन अन्नाकाली किसी काम के लिए आई थी, किन्तु ज्योंही उसकी नज़र शेखर पर पड़ी त्योंही उसने आँखें नीची कर लीं, और शेखर के उसे पुकारने या न पुकारने का निश्चय करने के पहले ही वहाँ से वह ग़ायब हो गई। शेखर ने समझ लिया कि उसके घर के लोगों ने जाने-आने की राह बन्द करके जो दीवार खड़ी कर दी है, उसका मतलब यह तनिक सी अन्नाकाली तक जान गई है।

और भी एक महीना बीत गया।

एक दिन भुवनेश्वरी ने बातों ही बातों में कहा—इस बीच में तूने ललिता को किसी दिन देखा है शेखर?

शेखर ने सिर हिलाकर कहा—नहीं तो, क्यों?

मा ने कहा—"लगभग दो महीने बाद कल मैंने उसे छत पर देखकर पुकारा था; लड़की जैसे बिलकुल बदल सी गई है, वह ललिता ही नहीं रही। बीमार-सी जान पड़ती है। मुँह सूख सा गया है, जैसे इतने ही अर्से में न-जाने कितनी उमर हो गई है। ऐसी गम्भीर हो रही थी कि देखकर किसकी मजाल है जो उसे चौदह बरस की लड़की कहे"—उनकी आखें डबडबा आईं। हाथ से आँसू पोंछकर भारी गले से

कहने लगीं—मैली धोती पहने थी, जिसमें आँचल के पास थोड़ी सी सिलाई की हुई थी। मैंने पूछा—तेरे पास पहनने को धोती नहीं है बेटी! उत्तर में उसने कह तो दिया कि है, लेकिन मुझे विश्वास नहीं होता। वह कभी अपने मामा की दी धोती नहीं पहनती; मैं ही उसे देती हूँ। इधर छः-सात महीने से मैंने भी उसे धोती या कोई कपड़ा नहीं दिया।

उनसे और आगे कुछ कहा नहीं गया। आँचल से आँसू पोंछने लगीं। ललिता को सचमुच वे अपनी लड़की के समान मानतीं और प्यार करती थीं।

शेखर दूसरी ओर ताकता हुआ चुपका बैठा रहा।

बहुत देर बाद भुवनेश्वरी फिर कहने लगीं—तेरे सिवा और किसी से वह कभी कुछ माँग भी नहीं सकती। बेवक्त भूख लगने पर भी वह घर में किसी से मुँह फोड़कर कुछ माँगती नहीं थी। वह मेरे आसपास घूमती-फिरती थी, और मैं उसका मुँह देखते ही भाँप लेती थी कि यह भूखी है। मुझे रह-रहकर यही याद आता है शेखर—शायद सूखा हुआ मुँह लिये उसी तरह अपने घर में घूमती होगी, कोई समझता ही न होगा, पूछता भी न होगा। मुझे तो वह केवल मुँह से ही मा नहीं कहती, हृदय से मा मानकर उसी तरह श्रद्धा और भक्ति भी करती है।

शेखर साहस करके मा की ओर मुँह करके देख न सका; जिधर देख रहा था उधर ही देखते रहकर बोला—

अच्छा तो मा, उसे क्या-क्या चाहिए, सो बुलाकर, पूछकर देतीं क्यों नहीं ?

मा ने कहा—वह क्यों लेगी ? तुम्हारे बाबूजी ने जाने-आने की ऊपर की राह तक बन्द कर दी है। और, मैं ही किस मुँह से देने जाऊँ ? मान लिया, गुरुबाबू दुःख के मारे, चिन्ता की आग में जलते-जलते, बिना सोचे-समझे एक अनुचित काम कर ही बैठे, तो हमें अपने आदमियों की तरह छोटा मोटा प्रायश्चित्त कराकर उनका उद्धार करना चाहिए था—उनके उस दोष पर पर्दा डाल देना चाहिए था। यह तो हमने किया नहीं; उन्हें एकदम छोड़ दिया, ग़ैर बना दिया ! क्या यह ठीक हुआ ? इसके सिवा, मैं तो यही कहूँगी कि तुम्हारे पिता के बेहद तङ्ग करने से ही गुरुचरण ने अपना धर्म छोड़ दिया। तगादे पर तगादा होने से आदमी शर्म के मारे सभी कुछ कर सकता है। मैं तो कहती हूँ कि गुरुचरण ने अच्छा ही किया। यह गिरीन्द्र लड़का हम लोगों की अपेक्षा उनका कहीं अधिक अपना और हितैषी है। उसके साथ ललिता का ब्याह हो जाने से लड़की बड़े सुख से रहेगी, यह मैं कहे देती हूँ। सुनती हूँ, अगले महीने में ही ब्याह होनेवाला है।

एकाएक मुँह फेरकर शेखर ने पूछा—अगले ही महीने में होगा ? सब ठीक हो गया ?

"सुनती तो यही हूँ।"

शेखर ने इस विषय में फिर कुछ नहीं पूछा।

मा ने कुछ देर चुप रहकर कहा—ललिता से सुना है कि उसके मामा का शरीर भी आजकल अच्छा नहीं है। बात ही ऐसी है। एक तो उनके मन में ही शान्ति या सुख रत्ती भर नहीं है, उस पर घर में रोज़ रोना-धोना लगा रहता है। एक मिनट के लिए भी उस घर में सुख या चैन नहीं है।

शेखर चुपचाप सुन रहा था; चुप ही रहा, कुछ बोला नहीं। दम भर बाद मा के उठ जाने पर वह आकर अपने बिस्तर पर लेट रहा, और ललिता के बारे में सोचने लगा।

शेखर का घर जिस गली में था उसके भीतर दो गाड़ियां के एक साथ आने-जाने भर की जगह न थी। एक गाड़ी किनारे के घर से बिलकुल सटकर न खड़ी हो तो दूसरी उधर से नहीं जा सकती। आठ-दस दिन के बाद एक दिन शेखर अपने आफ़िस से आ रहा था। गली में गुरुचरण के घर के सामने आगे जाने को जगह न पाकर गाड़ी रुक गई। शेखर उतर पड़ा। पूछने से मालूम हुआ, डाक्टर आया है।

कई दिन हुए, शेखर ने मा से सुना था कि गुरुचरण बीमार हैं। उसी ख़याल से वह घर न जाकर सीधा गुरुचरण के सोने की दालान में पहुँचा। वही बात थी। गुरुचरण मुर्दे की तरह बिछौने पर पड़े थे। एक ओर गिरीन्द्र और ललिता, दोनों सूखा मुँह लिये बैठे थे। सामने कुर्सी के ऊपर बैठे डाक्टर रोग की जाँच कर रहे थे।

गुरुचरण ने अस्पष्ट स्वर में शेखर से बैठने के लिए कहा। ललिता ने सिर पर धोती का आँचल और ज़रा खींचकर दूसरी ओर मुँह कर लिया।

डाक्टर महल्ले के ही आदमी थे। शेखर को पहचानते थे। रोग की परीक्षा करके, औषध और पथ्य की व्यवस्था करके, शेखर को साथ लिये बाहर आकर बैठे। गिरीन्द्र ने पीछे से आकर फ़ीस के रुपये देकर डाक्टर को जब विदा किया तब डाक्टर ने विशेष रूप से उसे सावधान करते हुए बतलाया कि रोग अभी तक अधिक आगे नहीं बढ़ा है; इस समय जलवायु बदलने की अत्यन्त आवश्यकता है।

डाक्टर के चले जाने पर शेखर और गिरीन्द्र दोनों फिर एक बार गुरुचरण के पास आकर खड़े हुए।

इशारे से गिरीन्द्र को एक ओर ले जाकर ललिता चुपके-चुपके बातें करने लगी, और शेखर सामने की कुर्सी पर बैठ कर स्तब्ध भाव से गुरुचरण की ओर ताकने लगा। वे दमभर पहले दूसरी ओर करवट बदल चुके थे, इसलिए शेखर के फिर लौट आने की ख़बर उनको नहीं हुई।

थोड़ी देर चुपचाप बैठे रहने के बाद शेखर जब उठकर चला गया तब भी ललिता और गिरीन्द्र की बातचीत ख़तम नहीं हुई थी—वैसे ही धीरे-धीरे दोनों बातें कर रहे थे। तात्पर्य यह कि शेखर से न किसी ने बैठने को कहा, न आने को और न बुलाकर कोई बात ही पूछी।

आज शेखर निश्चित रूप से यह जान आया कि ललिता ने उसे उसकी भारी ज़िम्मेदारी से सदा के लिए छुटकारा दे दिया है—अब वह बेखटके मुक्ति की साँस ले; अब कुछ शङ्का नहीं; ललिता अब उसे अपने साथ नहीं लपेटेगी! घर आकर कपड़े उतारते-उतारते बार-बार हज़ार बार यही ख़याल मन में आया कि आज वह अपनी आँखों देख आया है कि गिरीन्द्र ही अब उस घर के लोगों का परम हितैषी है, सबका आशा-भरोसा है, और ललिता का भावी आश्रय है। और वह, वह कोई नहीं है; ऐसी विपत्ति के समय भी ललिता ने उससे सलाह तक नहीं ली!

शेखर सहसा 'ओ:!' कहकर एक गद्दोदार आरामकुर्सी पर बैठ गया। आज ललिता ने उसे देखकर सिर पर आँचल और अधिक खींचते हुए दूसरी ओर मुँह फेर लिया, जैसे वह बिलकुल ही ग़ैर है—एकदम अपरिचित है! इतना ही नहीं, उसी की आँखों के सामने गिरीन्द्र को अलग अकेले में बुलाकर उसके साथ कितना घुल-मिल कर सलाह करती रही! यह वही आदमी तो है जिसकी देख-रेख में उस दिन उसने ललिता को थियेटर देखने नहीं जाने दिया था।

फिर भी शेखर ने एक बार यह सोचने की चेष्टा की, कि कदाचित् अपने गुप्त सम्बन्ध की बात याद करके ही ललिता ने लज्जा के मारे ऐसा व्यवहार किया है। लेकिन फिर सोचा, यही कैसे सम्भव है? ऐसा होता तो इतना सब

हो गया और वह क्या इतने दिनों में किसी कौशल—किसी बहाने—से एक बात भी उससे पूछने की चेष्टा न करती ?

अकस्मात् दरवाज़े के बाहर मा की आवाज़ सुन पड़ी। वे पुकारकर ऊँचे स्वर से कह रही थीं—कहाँ है रे, अभी तक तूने हाथ-मुँह नहीं धोया ; शाम हो गई !

शेखर जल्दी से उठ बैठा, और इस तरह गरदन घुमाये हुए झटपट नीचे उतर गया जिसमें उसके मुँह पर मा की निगाह न पड़े।

इधर कई दिन से बहुत-सी बातें अनेक प्रकार के रूप रखकर हर घड़ी उसके मन के भीतर आती-जाती रही हैं, केवल एक ही बात को वह सोचकर नहीं देखता था कि वास्तव में दोष किस ओर है—किसका है। उसने ललिता से अब तक एक भी आशा की बात नहीं कही, अथवा उसे ऐसी कोई बात कहने का मौक़ा नहीं दिया। बल्कि, कहीं ज़ाहिर न हो पड़े, वह किसी तरह का दावा न कर बैठे, इस डर से उसकी जान सूख रही थी। तथापि सब तरह का अपराध अकेली ललिता के ही मत्थे मढ़कर वह उसके विषय में विचार कर रहा था, और आप डाह, क्रोध, अपमान और अभिमान की आग में जला करता था। जान पड़ता है, इसी तरह संसार के सभी मर्द विचार करते हैं, और इसी तरह मन में कुढ़ते या जलते हैं।

जलते-जलते सात दिन बीत गये। आज भी वह सन्ध्याकाल के उपरान्त सूने कमरे के सन्नाटे में वही आग जलाकर

बैठा हुआ था। एकाएक दरवाज़े के पास आहट सुनकर सिर उठाकर देखते ही उसका हृदय उछल पड़ा। काली का हाथ पकड़े ललिता भीतर आई। वह नीचे फ़र्श पर बिछे हुए कार्पेट के ऊपर स्थिर होकर बैठ गई। काली ने कहा—शेखर दादा, हम दोनों जनी तुमको प्रणाम करने आई हैं—कल हम चली जायँगी।

शेखर मुँह से कुछ कह न सका, केवल ताकता रह गया।

काली फिर बोली—शेखर दादा, आपके चरणों के निकट हमसे अनेक अपराध हुए हैं, हमने अनेक दोष किये हैं; उन सबको भूल जाना।

शेखर समझ गया, इसमें एक शब्द भी काली का अपना नहीं है। वह सिखलाई हुई बातें ही, ग्रामोफ़ोन की तरह, कह रही है। अब की शेखर ने पूछा—तुम लोग कहाँ जाओगी?

"पछाँह। बाबूजी को लेकर हम सब मुँगेर जायँगे—वहाँ गिरीन्द्र बाबू का घर है। बाबूजी के आराम हो जाने के बाद भी अब फिर हम लोगों का लौटना न होगा। डाक्टर साहब ने कहा है, इस देश की आब-हवा बाबूजी के लिए माफ़िक़ नहीं होगी।"

शेखर ने पूछा—अब उनकी हालत कैसी है?

"कुछ-कुछ अच्छी ही है" कहकर काली ने आँचल के नीचे से धोतियों के कई जोड़े निकाल कर दिखाये, और कहा—ताईजी ने ये धोतियाँ हमें ख़रीद दी हैं।

ललिता अब तक चुपकी बैठी थी। उसने उठकर टेबिल के पास जाकर उस पर एक कुंजी रख दी, और कहा—आलमारी की यह चाबी अब तक मेरे ही पास थी। (तनिक मुसकिराकर) लेकिन आलमारी में अब रुपया-पैसा कुछ नहीं है, सब ख़र्च हो गया।

शेखर चुप रहा।

काली ने कहा—चलो दिदिया, रात हो रही है।

ललिता के कुछ कहने के पहले ही शेखर अबकी अचानक झटपट कह उठा—जाओ तो काली, नीचे से मेरे लिए दो पान तो लगा लाओ।

ललिता ने काली का हाथ पकड़ लिया। उसे रोककर कहा—"तू यहीं बैठ काली, मैं ही लाये देती हूँ।" वह तेज़ी से नीचे उतर गई। दम भर बाद पान लगा लाकर काली के हाथ में उसने दे दिये। काली ने जाकर शेखर को दे दिये।

हाथ में पान लिये शेखर सन्नाटे में चुपका बैठा रहा।

"जाती हूँ शेखर दादा" कहकर पैरों के पास ज़मीन पर सिर रखकर काली ने प्रणाम किया। ललिता जहाँ खड़ी थी वहीं पृथिवी पर सिर रखकर उसने भी प्रणाम किया। इसके बाद धीरे-धीरे काली के साथ वहाँ से चल दी।

शेखर अपने भले-बुरे की भावना और आत्ममर्यादा लिये विवर्ण मलिन मुख से, विह्वल-विमूढ़ की तरह, स्तब्ध बैठा रहा।

वह आई, जो कुछ कहना था सो कहकर सदा के लिए विदा होकर चली गई; किन्तु शेखर अपने मन की कोई भी बात नहीं कह सका! जैसे उसके कहने के लिए कुछ था ही नहीं, इस तरह सारा अवसर बीत गया। इस समय ललिता जान-बूझकर काली को इसलिए साथ ले आई थी कि पहले की कोई बात न छेड़ी जाय। यह भी मन ही मन शेखर ने समझ लिया। अब उसका शरीर सन्नाने लगा, सिर में चक्कर आ गया। वह उठकर बिस्तर पर आँखें मूँदे हुए लेट रहा।

११

गुरुचरण का बिगड़ा हुआ स्वास्थ्य मुँगेर के जल-वायु में जाकर भी नहीं सुधरा। साल भर के लगभग बीतने पर वे दुःख का भारी भार अपने सिर से उतारकर संसार से चल बसे। गिरीन्द्र सचमुच उन्हें हृदय से चाहने लगा था, और अन्त तक उनकी यथाशक्ति सेवा-सहायता करता रहा।

मरते समय आँखों में आँसू भरे हुए गुरुचरण बाबू ने उसका हाथ पकड़कर यह अनुरोध किया था कि वह अब कभी किसी दिन ग़ैर की तरह उनके परिवार को न छोड़ दे; इस गहरी मित्रता को समीप की आत्मीयता में परिणत कर दे। इस इशारे का अर्थ यही था कि गिरीन्द्र को वे अपना दामाद बनाना चाहते थे। गुरुचरण ने गिरीन्द्र से कहा था—यह सुखदायक सम्बन्ध अगर मैं यहाँ नहीं देख सका,

बीमारी वग़ैरह की उलझन में समय नहीं हो सका, तो कुछ हर्ज नहीं; मैं परलोक में बैठकर देख लूँगा। देखो, मेरी अभिलाषा अधूरी न रह जाय।

गिरीन्द्र ने उस समय ख़ुशी के साथ हृदय से ऐसा करने की प्रतिज्ञा की थी।

गुरुचरण के कलकत्तेवाले मकान में जो किरायेदार रहते थे उन्हीं के ज़रिए बीच-बीच में भुवनेश्वरी इस परिवार के समाचार जान लिया करती थीं। गुरुचरण के देहान्त का हाल भी वे सुन चुकी थीं।

यहाँ शेखर के घर में एक दारुण दुर्घटना हो गई। एकाएक नवीन बाबू की मृत्यु हो गई। भुवनेश्वरी असीम, असह्य शोक और दुःख के मारे पागल सी हो गईं; बड़ी बहू को सब घर-गिरिस्ती सौंपकर झटपट काशीवास के लिए चली गईं। जाते समय कह गईं कि अगले साल शेखर के ब्याह का प्रबन्ध हो जाने पर ख़बर देना, मैं आकर ब्याह कर जाऊँगी।

ब्याह के बारे में नवीन बाबू स्वयं सब ठीक कर गये थे। अब तक ब्याह हो भी जाता, केवल उनके मर जाने से ही साल भर के लिए रुक गया था। लड़कीवाले अब और अधिक विलम्ब नहीं कर सकते थे, इसी से कल आकर वे 'तिलक' की रीति पूर्ण कर गये थे। इसी महीने में ब्याह

होगा। आज शेखर अपनी माता को लाने के लिए जाने की तैयारी कर रहा था। आलमारी से सामान निकालकर जब वह उसको सन्दूक के भीतर भरने लगा तब बहुत दिनों के बाद ललिता की याद हो आई। यह सब वही किया करती थी।

ललिता वग़ैरह को गये तीन साल से अधिक समय हुआ। इस बीच में उन लोगों की कोई ख़बर शेखर को नहीं मिली। उसने जानने की चेष्टा भी नहीं की। शायद इच्छा भी नहीं थी। क्रमशः ललिता के ऊपर उसके मन में एक प्रकार की घृणा का भाव हो आया था। किन्तु आज एकाएक इच्छा हुई—अगर किसी तरह उसकी कुछ भी ख़बर मिल जाती तो अच्छा होता। अवश्य ही वह अच्छी दशा में होगी; (क्योंकि गिरीन्द्र ग़रीब नहीं, पैसेवाला है, यह शेखर को मालूम था) लेकिन, तो भी, कब उसका ब्याह हुआ, अपने स्वामी के पास वह सुखी है या नहीं, यही सब बातें सुनने को जी चाहता है।

गुरुचरण के कलकत्तेवाले घर में जो पहले किरायेदार रहते थे वे भी निकल गये—घर ख़ाली पड़ा है। शेखर ने सोचा, चारु के बाप से जाकर पूछूँ; उन्हें ज़रूर ही गिरीन्द्र के समाचार ज्ञात होंगे। दमभर के लिए सन्दूक में सामान रखना छोड़कर वह शून्य दृष्टि से खिड़की के बाहर ताकता हुआ यही सोच रहा था। इसी बीच अचानक घर की

पुरानी दासी ने आकर दरवाज़े के बाहर खड़े होकर पुकारा—छोटे भैया, आपको काली की अम्मा ने बुलाया है।

शेखर ने उसकी ओर मुँह करके अत्यन्त अचरज के साथ पूछा—कौन बुलाता है? काली की अम्मा कौन?

दासी ने हाथ से गुरु बाबू का घर दिखाकर कहा—वही हमारी पुरानी परोसिन काली की अम्मा छोटे भैया। वे कल रात को आ गई हैं।

"अच्छा चल, मैं अभी आता हूँ" कहकर शेखर फ़ौरन नीचे उतरा।

उस समय दिन ढल चुका था। घर के भीतर शेखर के पैर रखते ही भीतर से हृदय-विदारक करुण-क्रन्दन उमड़ उठा। विधवा के वेश में बैठी हुई गुरु बाबू की स्त्री के पास जाकर शेखर उसी जगह ज़मीन में बैठ गया, और चुपचाप धोती के खूँट से अपने आँसू पोंछने लगा। केवल गुरुचरण के लिए ही नहीं, अपने पिता के लिए भी वह फिर शोकाकुल और विह्वल हो उठा।

शाम हो गई। ललिता आकर दिया जला गई। उसने दूर ही से गले में आँचल डालकर शेखर को प्रणाम किया। फिर क्षण भर ठहरकर अपेक्षा करने के बाद धीरे-धीरे अन्यत्र चली गई। शेखर के ख़याल में ललिता अब पराई पत्नी हो चुकी थी, अतएव वह सत्रह साल की जवान पराई स्त्री की ओर न तो आँख उठाकर देख ही सका, और न बुलाकर

उससे बातचीत ही कर सका। मगर फिर भी कनखियों से उसने जितना देख पाया, उससे जान पड़ा कि ललिता जैसे अब और कुछ बड़ी हो गई है, साथ ही बहुत दुबली हो गई है।

बहुत रोने-धोने के बाद गुरु बाबू की विधवा ने जो कुछ कहा उसका सारांश यही है कि वे इस घर को बेचकर मुँगेर में दामाद ही के पास रहना चाहती हैं। शेखर के बाप को बहुत दिनों से यह घर मोल लेने की इच्छा थी; अतएव इस समय अगर मुनासिब दामों में वे ही—शेखर आदि—मोल ले लें तो उन्हें भी यह सन्तोष होगा कि घर बिकने पर भी एक तरह से अपने ही आदमियों के अधिकार में रहा। उन्हें फिर घर के बिकने का कुछ भी क्लेश न होगा। और भी सुबीता यह रहेगा कि वे आइन्दा कभी यदि इस देश में आवेंगी तो दो-एक दिन के लिए अपने घर में ठहर सकेंगी।

सब सुनकर शेखर ने वादा किया कि वह मा से इस बारे में पूछेगा, और अपनी शक्ति भर उनकी इच्छा की पूर्ति के लिए प्रयत्न करेगा।

गुरु बाबू की स्त्री ने आँसु पोंछकर पूछा—दीदी क्या न आवेंगी शेखर?

शेखर ने बतलाया कि आज ही रात को वह उन्हें लाने के लिए जानेवाला है। इसके बाद ललिता की मामी ने एक-एक करके और-और सब समाचार पूछकर सब हाल-चाल जान लिया। शेखर का व्याह कब और कहाँ होगा;

कै हज़ार रुपये, कितने गहने देने का वादा हुआ है; नवीन बाबू कैसे और कब मरे; दीदी ने क्या किया, कैसी हैं; ये सब बातें पूछीं, और सुनती रहीं।

शेखर ने जब उनकी बातचीत से छुट्टी पाई तब चाँदनी निकल आई थी। इसी समय गिरीन्द्र ऊपर से उतरा, और शायद अपनी बहन के यहाँ गया। गुरुचरण की स्त्री ने उसे देखकर शेखर से पूछा—मेरे दामाद के साथ क्या तुम्हारी जान-पहचान नहीं है शेखर? ऐसे लायक़ लड़के दुनिया में दुर्लभ होते हैं।

इस बारे में उसको भी रत्ती भर सन्देह नहीं है, यह शेखर ने उनको जताया। साथ ही गिरीन्द्र से बातचीत हो चुकी है, उससे जान-पहचान है, यह कहकर शेखर शीघ्र उठ खड़ा हुआ और तेज़ी से बाहर निकला। लेकिन बाहर बैठक के सामने आकर उसको एकाएक रुक जाना पड़ा।

अँधेरे में, दरवाजे की आड़ में, ललिता खड़ी थी। उसने कहा—सुनो तो, आज क्या मा को लाने के लिए जाओगे?

"हाँ।"

"वे क्या बहुत अधिक शोक से व्याकुल और शिथिल हो गई हैं?"

"हाँ, उस समय तो पागलों की-सी ही हालत हो रही थी।"

"तुम्हारा शरीर कैसा है?"

"अच्छा है" कहकर शेखर फ़ौरन् से पेश्तर चला गया।

राह में आकर लज्जा और घृणा के मारे एड़ी से चोटी तक शेखर का शरीर काँप उठा। ललिता के बहुत निकट खड़ा होना पड़ा था, यह सोचकर उसे जान पड़ने लगा कि उसका भी शरीर अपवित्र हो गया है।

घर में आकर उसने किसी तरह सन्दूक़ को बन्द कर दिया। गाड़ी छूटने में अभी अर्सा था। यह देखकर शेखर तनिक पलँग पर लेट रहा। ललिता की ज़हरीली याद को जलाकर भस्म कर देने के इरादे से क़सम खाकर उसने हृदय के भीतर रोम-रोम में, छिद्र-छिद्र में, घृणा का दारुण दावानल प्रज्वलित कर दिया। जलने की यातना से जर्जर होकर उसने मन में, न कहने योग्य भाषा में, ललिता का तिरस्कार किया; उसे कुलटा तक कहने में संकोच नहीं किया। बातचीत के बीच में गुरुचरण की स्त्री ने कहा था—'यह तो सुख का ब्याह नहीं था, इसी लिए अन्त तक किसी को ख़याल नहीं हुआ। वैसे ललिता ने तो पहले ही तुम सब लोगों को ख़बर देने के लिए मुझसे कहा था।' ललिता की यह ढिठाई शेखर के हृदय में धधक रही अग्नि-राशि के भी ऊपर जाकर ज्वाला-जाल फैलाती हुई प्रज्वलित होने लगी।

१२

मा को लेकर शेखर जब लौट आया तब भी ब्याह का दिन दूर था—दस-बारह दिन बीच में थे।

दो-तीन दिन के बाद एक दिन सबेरे के समय भुवनेश्वरी के पास बैठी हुई ललिता एक डलवे में कोई चीज़ उठा-उठाकर रख रही थी। शेखर को ललिता की उपस्थिति मालूम न थी, इसी से किसी काम के लिए "मा" कहकर कमरे के भीतर पैर रखते ही वह अकचकाकर खड़ा हो गया। ललिता सिर झुकाकर काम करने लगी।

मा ने पूछा—क्या है रे?

वह जिस काम से आया था उसे भूलकर "नहीं, इस वक्त रहने दो" कहता हुआ चटपट वहाँ से चल दिया। उसने ललिता का मुँह नहीं देख पाया था; किन्तु दोनों हाथों पर नज़र पड़ गई थी। हाथ बिलकुल ख़ाली नहीं थे, केवल काँच की दो-दो चूड़ियाँ ही उनकी शोभा बढ़ा रही थीं। शेखर ने मन ही मन क्रूर हँसी हँसते हुए कहा—यह भी एक तरह का ढोंग है! वह जानता था, गिरीन्द्र मालदार है। उसकी पत्नी के हाथों के इस प्रकार अलङ्कार-शून्य होने का कोई उचित कारण उसे न सूझ पड़ा।

उसी दिन सन्ध्या के समय, जब वह तेज़ी से नीचे उतर रहा था तब, इधर से ललिता भी ऊपर चढ़ रही थी। बीच में मुठभेड़ हो गई। ललिता एक तरफ़ खिसककर खड़ी हो रही। किन्तु शेखर के पास पहुँचते ही अत्यन्त संकोच के साथ धीरे से बोली—तुमसे एक बात कहनी है।

शेखर ने ज़रा ठिठककर विस्मयसूचक स्वर में कहा—किससे ? मुझसे ?

ललिता ने उसी तरह धीरे से कहा—हाँ, तुम्हीं से।

"मुझसे भला अब क्या कहने की बात हो सकती है !" कहता हुआ शेखर पहले से भी अधिक तेज़ी के साथ झटपट नीचे उतर गया।

ललिता कुछ देर उसी जगह सन्नाटे में आकर खड़ी रही, फिर बहुत ही हलकी दबी हुई साँस छोड़कर धीरे-धीरे चली गई।

दूसरे दिन प्रातःकाल शेखर अपने घर की बाहरी बैठक में बैठा उसी दिन का दैनिक-पत्र पढ़ रहा था। इसी बीच में बेहद विस्मय के साथ आँखें उठाकर उसने देखा, गिरीन्द्र उसके यहाँ आ रहा है। गिरीन्द्र नमस्कार कर के एक कुर्सी खींचकर शेखर के पास ही बैठ गया। शेखर ने भी नमस्कार करके अखबार एक ओर रख दिया और प्रश्न करने का भाव मुख पर लाकर उसकी ओर देखा। दोनों में देखने भर का परिचय था, बातचीत करने का अवसर नहीं आया था, और इसके लिए दोनों में से किसी ने आज तक इच्छा नहीं प्रकट की थी।

गिरीन्द्र ने एकदम पहले ही काम की बात छेड़ दी। बोला—विशेष प्रयोजन से आज मैं आपको कष्ट देने आया हूँ। मेरी सासजी का इरादा जो कुछ है सो तो आप सुन

हो चुके हैं—वे अपना मकान आप लोगों के हाथ बेच डालना चाहती हैं। आज मेरे द्वारा उन्होंने कहला भेजा है कि जल्दी ही जो कुछ हो, इसका प्रबन्ध हो जाय, तो वे इसी महीने मुँगेर को लौट जा सकेंगी।

गिरीन्द्र को देखते ही शेखर के हृदय के भीतर आँधी उठ खड़ी हुई थी। गिरीन्द्र की बातें उसे तनिक भी अच्छी नहीं लगीं। उसने अप्रसन्न मुख से कहा—यह तो ठीक है, लेकिन पिताजी के न रहने से मेरे बड़े भाई ही अब घर के मालिक हैं। उन्हीं से यह सब कहना चाहिए।

गिरीन्द्र ने तनिक मुसकिराकर कहा—यह तो हम लोग भी जानते हैं। लेकिन उनसे अगर आप ही कहें तो अधिक अच्छा होगा।

शेखर ने उसी तरह से जवाब दिया—आपके कहने से भी काम हो सकता है। उधर के अभिभावक तो इस समय आप ही हैं।

गिरीन्द्र—मेरे कहने की ज़रूरत हो तो मैं कह सकता हूँ; किन्तु कल छोटी दीदी कह रही थीं कि आप ज़रा ध्यान दें तो यह काम बहुत ही सहज में हो सकता है।

शेखर अब तक मोटे गाव-तकिए के सहारे पड़ा बात कर रहा था। गिरीन्द्र की बात सुनते ही एकदम सीधा हो बैठा, और बोला—क्या कहा आपने? कौन कहता था?

गिरीन्द्र—छोटी दीदी—ललिता दीदी कहती थीं—

शेखर विस्मय के वेग से विमूढ़ बन गया। इसके उपरान्त गिरीन्द्र क्या-क्या कह गया, इसकी उसे ख़बर ही न हुई। उसकी बातों का एक भी शब्द उसके कानों तक नहीं पहुँचा। थोड़ी देर विह्वल दृष्टि से गिरीन्द्र के मुँह की ओर ताकते रहकर उसने पूछा—मुझे माफ़ कीजिएगा गिरीन्द्र बाबू, क्या ललिता के साथ आपका व्याह नहीं हुआ?

गिरीन्द्र ने जीभ काटकर कहा—जी नहीं, उस घर के सभी आदमियों को तो आप जानते हैं; काली के साथ मेरा—

"लेकिन तय तो और ही कुछ हुआ था—"

ललिता की ज़बानी गिरीन्द्र सब हाल सुन चुका था। बोला—हाँ, तय और ही कुछ हुआ था, काली से व्याह की बात नहीं हुई थी, यह सच है। गुरुचरण बाबू मरते समय मुझसे अनुरोध कर गये थे कि मैं और कहीं अपना व्याह न करूँ। मैंने भी वचन दे दिया था। उनकी मृत्यु के बाद ललिता दीदी ने मुझसे समझाकर कहा—'अवश्य ही ये सब बातें और कोई नहीं जानता कि पहले ही उनका व्याह हो गया है, और उनके स्वामी जीवित हैं।' इस बात पर शायद और कोई विश्वास न करता लेकिन मैंने उनकी एक भी बात झूठ नहीं समझा—अविश्वास नहीं किया। इसके अलावा स्त्री का एक बार के सिवा दुबारा व्याह नहीं हो सकता—यह क्या?

शेखर की आँखों में पहले ही आँसू भरे हुए थे, इस समय वे आँखों के कोनों से ढुलक-ढुलककर गिरीन्द्र के आगे ही वरसने लगे। किन्तु इधर का उसे होश ही न था। उसको इसका ख़याल ही न आया कि एक मर्द के आगे दूसरे मर्द की इस तरह की कमज़ोरी ज़ाहिर होना बड़ी शर्म की वात है।

गिरीन्द्र चुपचाप शेखर की ओर ताकने लगा। उसके मन में पहले ही से सन्देह था—आज उसने निश्चित रूप से ललिता के स्वामी को पहचान लिया। शेखर ने आँसू पोंछकर भारी आवाज़ में कहा—लेकिन आप तो ललिता को चाहते हैं न ?

गिरीन्द्र के चेहरे पर प्रच्छन्न वेदना की गहरी छाया पड़ी; मगर फ़ौरन् ही अपने को सँभालकर वह मुसकिराने लगा। उसने पूर्वोक्त प्रश्न के उत्तर में धीरे-धीरे कहा—आपके इस प्रश्न का उत्तर देना अनावश्यक है। इसके सिवा स्नेह या प्यार चाहे जितना हो, जान-बूझकर कोई पराई ब्याहता स्त्री से ब्याह नहीं करता। अस्तु, इस वात को जाने दीजिए। मैं अपने बड़ों के वारे में इस तरह की वातचीत नहीं करना चाहता।

एक वार और हँसकर गिरीन्द्र उठ खड़ा हुआ। "अच्छा, तो आज चलता हूँ, फिर मुलाक़ात होगी" कहकर नमस्कार करके वह चल दिया।

शेखर शुरू से ही मन में गिरीन्द्र के ऊपर विद्वेष का भाव रखता आ रहा था। और, इस अवसर पर, वह विद्वेष का भाव घोर घृणा के रूप में बदल गया था। किन्तु आज उसके जाते ही शेखर ने उठकर जहाँ गिरीन्द्र बैठा था उस जगह, बार-बार सिर रखकर, इस अपरिचित ब्रह्मसमाजी युवक के उद्देश से प्रणाम किया। मनुष्य चुपचाप कितना बड़ा स्वार्थ-त्याग कर सकता है, हँसते-हँसते कैसी कठोर प्रतिज्ञा का पालन कर सकता है, यह आज पहले-पहल उसने देखा।

तीसरे पहर भुवनेश्वरी अपने कमरे में फ़र्श पर बैठी हुई ललिता की सहायता से नये कपड़ों को तहा-तहाकर उनका ढेर लगा रही थीं। इसी समय शेखर वहाँ जाकर मा के बिस्तरे पर बैठ गया। आज वह ललिता को देखते ही जान लेकर वहाँ से भागा नहीं। मा ने उसकी ओर देखकर कहा—क्यों?

शेखर कुछ उत्तर न देकर कपड़ों का तहाकर रक्खा जाना देखने लगा। दमभर बाद उसने पूछा—यह क्या हो रहा है मा?

मा ने कहा—नये कपड़े किसे किस हिसाब से दिये जायँगे, कितने कपड़े चाहिए, यही सब हिसाब लगाकर देख रही हूँ। जान पड़ता है, अभी और कपड़े ख़रीदने होंगे। क्यों न बेटी?

ललिता ने सिर हिलाकर अनुमोदन किया।

शेखर ने हँसते-हँसते कहा—और जो मैं ब्याह न करूँ तो?

भुवनेश्वरी ने भी हँसकर कहा—तुम यह भी कर सकते हो बेटा।

शेखर ने हँसकर कहा—तो यही बहुत सम्भव है।

मा ने गम्भीर होकर कहा—यह कैसी बात है! ऐसी अलच्छनी बात मुँह से न निकालना।

शेखर ने कहा—इतने दिन तक मुँह से नहीं निकाली मा, लेकिन अब चुप रहने से काम बिगड़ता है—चुप रहने से महापाप होगा मा।

भुवनेश्वरी की समझ में कुछ न आया। वे शङ्कित होकर बेटे के मुँह की ओर ताकने लगीं।

शेखर ने कहा—अपने इस लड़के के अनेक अपराध तुमने क्षमा किये हैं मा, यह भी क्षमा करो। मैं सचमुच यह ब्याह न कर सकूँगा।

बेटे की बात सुनकर और मुँह का भाव देखकर भुवनेश्वरी सचमुच घबरा उठीं; किन्तु उस भाव को दबाकर उन्होंने कहा—अच्छा, अच्छा, यही होगा। इस समय तो तू यहाँ से जा। मुझे जला नहीं शेखर! मुझे बहुत काम करना है।

शेखर ने और एक बार हँसने की व्यर्थ चेष्टा करके सूखे स्वर से कहा—नहीं मा, तुमसे सच कहता हूँ, यह ब्याह किसी तरह नहीं हो सकता।

मा—क्यों, क्या यह भी कोई लड़कों का खेल है!

शेखर—लड़कों का खेल नहीं है, इसी से तो यह कहता हूँ मा।

अबकी भुवनेश्वरी ने सचमुच डरकर क्रोध के साथ कहा—मुझे सब हाल खुलासा बतला। इस तरह की गोल-मोल बात मुझे अच्छी नहीं लगती।

शेखर ने धीरे से कहा—और किसी दिन सुन लेना मा। किसी दिन सब कहूँगा।

"और किसी दिन कहेगा!" मा ने कपड़ों का ढेर एक तरफ़ हटाकर कहा—तो फिर आज ही मुझको काशी भेज दे। मैं ऐसे घर में अब एक रात भी बिताना नहीं चाहती।

शेखर सिर झुकाये बैठा रहा। भुवनेश्वरी ने और भी अधिक धीर होकर कहा—ललिता भी मेरे साथ कल जाने को तैयार है। देखूँ, जो उसका कुछ प्रबन्ध कर सकूँ।

अबकी शेखर सिर उठाकर हँसा। बोला—तुम ले जाओगी अपने साथ मा, फिर उसका और क्या प्रबन्ध चाहिए? तुम्हारे हुक्म से बढ़कर उसके लिए और क्या चाहिए?

लड़के को हँसते देखकर उनके मन में कुछ आशा हुई। उन्होंने एक बार ललिता के मुँह की ओर देखकर कहा—सुन ली बेटी इसकी बातें? यह समझता है, मैं चाहूँ तो अपनी इच्छा के अनुसार तुझे चाहे जहाँ ले जा सकती हूँ!—मानो इसकी मामी की राय लेनी ही न होगी!

ललिता ने कुछ उत्तर नहीं दिया। शेखर की बातचीत का ढँग देखकर वह मन ही मन अत्यन्त संकुचित हो उठी थी।

"मामी को जताना चाहती हो तो जाकर जता दो, यह तुम्हारी इच्छा की बात है। लेकिन असल में होगा वही जो तुम कहोगी मा, यह मैं भी समझता हूँ, और जिसे तुम ले जाना चाहती हो वह भी समझती है। वह तुम्हारी बहू है।" इतना कहकर शेखर ने सिर झुका लिया।

भुवनेश्वरी अचरज के मारे सन्नाटे में आ गईं। माता के आगे सन्तान की यह कैसी दिल्लगी है! एकटक पुत्र की ओर देखते हुए उन्होंने कहा—क्या कहा? वह मेरी कौन है?

शेखर से सिर नहीं उठाया गया; किन्तु उसने उत्तर दिया। धीरे-धीरे बोला—अभी तो कह चुका हूँ मा। यह बात आज की नहीं है, चार साल से अधिक समय हुआ—तुम सचमुच उसकी मा (सास) हो। मैं इस बारे में और कुछ नहीं कहूँगा। उसी से पूछो, वही कहेगी।

इतना कहते ही शेखर ने देखा, ललिता गले में आँचल डालकर मा को प्रणाम करने का उद्योग कर रही है। शेखर भी उठकर उसके पास जा खड़ा हुआ। दोनों ने एक साथ मा के पैरों पर सिर रखकर प्रणाम किया। इसके बाद शेखर उठकर चुपचाप चल दिया।

भुवनेश्वरी की आँखों से आनन्द के आँसू बहने लगे। वे ललिता को सचमुच बहुत ही प्यार करती थीं। तब

उन्होंने सन्दूक खोलकर अपने सब गहने निकाले, और ललिता को पहनाते समय एक-एक करके धीरे-धीरे सारा रहस्य जान लिया। सब हाल सुनकर उन्होंने कहा—तो इसी से गिरीन्द्र का काली के साथ ब्याह हुआ ?

ललिता ने कहा—हाँ मा, यही बात है। नहीं जानती, गिरीन्द्र बाबू के समान सज्जन पुरुष संसार में कोई है या नहीं। मैंने जब उनसे समझाकर सब हाल कहा तब सुनते ही उन्होंने विश्वास कर लिया कि मेरा ब्याह हो गया है—स्वामी मुझे ग्रहण करें या न करें, यह उनकी इच्छा, लेकिन वे मौजूद हैं।

भुवनेश्वरी ने ललिता के सिर पर हाथ रखकर कहा—है क्यों नहीं बेटी ! मैं आशीर्वाद देती हूँ, वह जन्म-जन्म चिर-जीवी हो। तुम यहाँ तनिक बैठो बेटी, मैं जाकर अविनाश (बड़े बेटे) से कह आऊँ कि लड़की बदल गई है।

शरद्-ग्रन्थावली

बँगला के लब्धप्रतिष्ठ उपन्यास-लेखक बाबू शरच्चन्द्र चट्टोपाध्याय के उपन्यासों का हिन्दी अनुवाद इंडियन प्रेस, लिमिटेड, प्रयाग, से प्रकाशित होने लगा है। पुस्तकें बढ़िया ऐंटिक काग़ज़ पर छापी जाती हैं। जिल्द देखने ही योग्य होती है। इस ग्रन्थावली के ग्राहकों* को ग्रन्थावली की सभी पुस्तकें पौने मूल्य में दी जाती हैं। ग्रन्थावली की तीन पुस्तकें प्रकाशित हो चुकी हैं;—

पण्डितजी—मतलब मास्टर साहब से है। इसमें बड़े अच्छे ढँग से कुलीनता, उच्चशिक्षा, द्विज और द्विजेतर, गाँव की भलाई और अपनी तरक़्क़ी, नई शिक्षा और मिथ्या अभिमान आदि पर विचार हैं। उपन्यास बहुत ही सुन्दर है। 'पण्डितजी' की सर्वत्र प्रशंसा हो रही है। बढ़िया जिल्द पर भाव-पूर्ण चित्र में दिखलाया गया है कि सुंदूर श्रीवृन्दावन की ओर उपन्यास-नायक वृन्दावन अपनी गृहिणी कुसुम के साथ, सर्वस्व त्यागकर, पैदल जा रहा है। मूल्य १॥) रु०

बड़ी दीदी—मतलब बड़ी बहन से है। इसमें लेखक ने दिखलाया है कि बड़ी बहन—माधवी—भले घर की शिक्षिता बालविधवा है। बड़ा अच्छा स्वभाव है। नैहर की

---

* ॥) भेजकर ग्रन्थावली के ग्राहकों में नाम लिखाया जा सकता है।

गृहस्थी की मानों जान है। उसके घर एक अजनबी मास्टर उसकी छोटी बहन के पढ़ाने को रक्खा गया। रहने को एक कमरा दिया गया। भोजन भी दिया जाता था। यह असल में एक मालदार वकील का एम० ए० पास लड़का था जो माँ-बाप से रूठकर घर से चल दिया था। इसको माधवी अनजानते प्यार करने लगी। दोनों का आचरण पवित्र रहने पर भी उनमें प्रेम का सञ्चार हो गया। मानव-स्वभाव-सुलभ चपलता ने न वैधव्य के बाँध की परवा की न सादगी की धाक मानी। अन्त में सुरेन्द्र गाड़ी से कुचला जाकर अस्पताल भेजा गया और चङ्गा होने पर, कुछ दिन बाद, अपनी ननिहाल की ज़मींदारी का मालिक बना। इस बहाने लेखक ने ज़मींदारों और उनके गुमाश्तों का जीता-जागता चित्र खींचकर ननँद-भौजाई के व्यवहार का धुँधला सा चित्र दिखलाते हुए माधवी को उसकी ससुराल पहुँचा दिया। वहाँ बड़ी दीदी का पता पाकर सुरेन्द्र माधवी की दग़ा से नीलाम हुई सम्पत्ति उसे लौटाने दौड़ा गया किन्तु रास्ते में ही पुरानी चोट ने उभड़कर उसे मृत्यु के समीप पहुँचा दिया। माधवी से भेंट हो गई; सुरेन्द्र उसे घर लौटा लाया सही किन्तु उसी की गोद में उसके प्राण-पखेरू उड़ गये। जिल्द सुन्दर सचित्र है। मूल्य केवल १) रु०

परिणीता—आपके हाथ में है ही।

मिलने का पता—

मैनेजर, इंडियन प्रेस, लिमिटेड, प्रयाग।